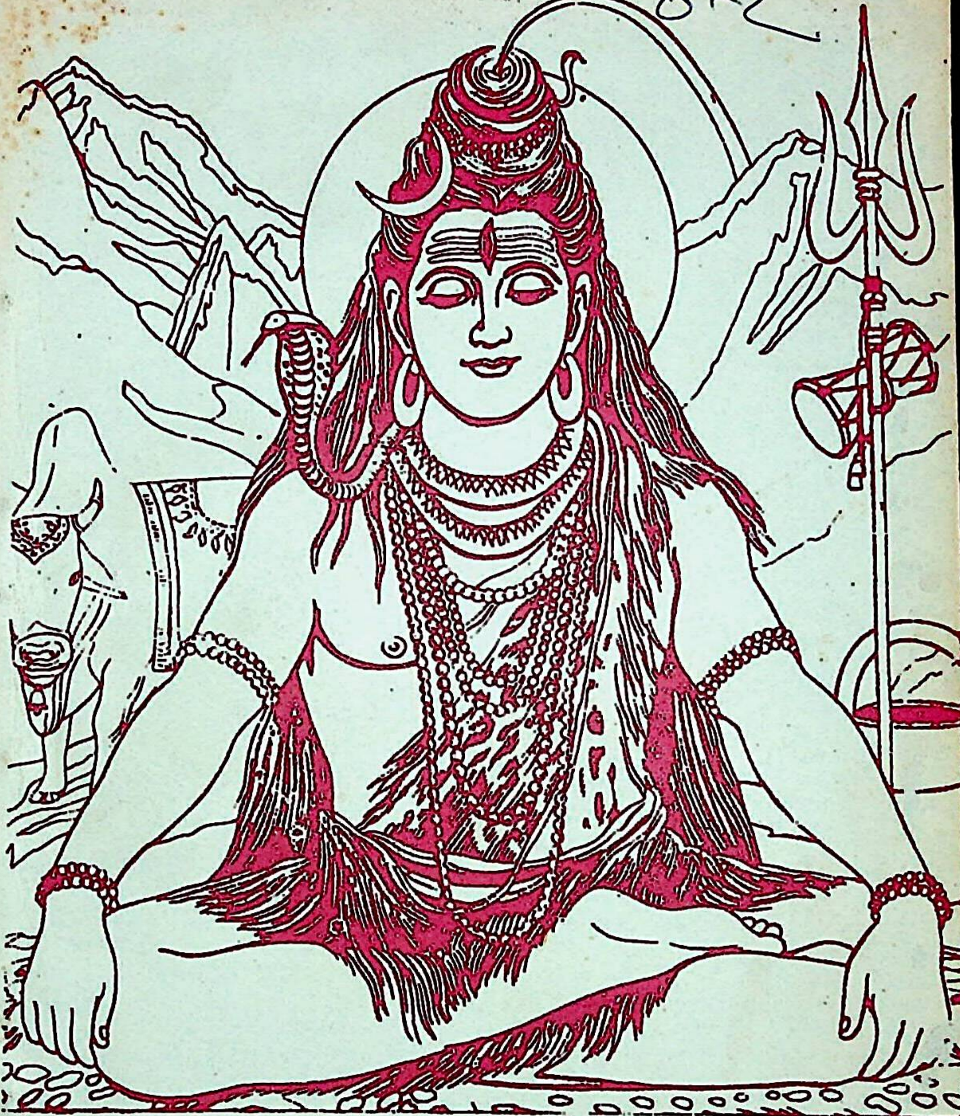


परम शिव

तपोमूर्ति स्वामी ओंकारानन्द गिरि महाराज

विवेक आश्रम न्यासका आठवां दीप

परम शिव

तपोमूर्ति श्रीस्वामी ओङ्कारानन्दगिरि

प्रकाशक :
विवेक आश्रम न्यास के भक्त विशेष

•

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :
(१) विवेक आश्रम—मुक्ति कुण्ड
(मायाकुण्ड), ऋषिकेश-२४९२०१

(२) नर्मदा सत्संग भवन
ज्ञानसत्र प्रकाशन 'न्यास'
नर्मदापुर-होशंगाबाद-४६१००१

(३) श्रीदक्षिणामूर्तिमठ
डी० ४९/९ ए मिश्रपोखरा
वाराणसी-२२१०१०

प्रथम संस्करण : २०००
वसन्त पञ्चमी, वि० सं० २०५१

मूल्य : १३) तेरह रुपये मात्र

•

मुद्रक :
आनन्द कानन प्रेस
डी० १४/६५ टेढ़ीनीम
वाराणसी
फोन : ३२२३३७

समर्पण-प्रक्रिया

शंकरकुलाधिप - अर्बुदाचल सुखप्रद
तहँ निरञ्जनपीठ का आचार्यपद।
गह मण्डलीश्वर श्रीमहेशानन्द गिरि
गौरवान्वित कर रहे हैं सर्व गिरि ॥१॥

शुभप्रेरणा जिनकी सभी उत्साह-दा
गीतोपनिषदों पर लिखाने को सदा।
कृतियां उन्हीं को प्रणव को अर्पित कहीं
जो राष्ट्रभाषा में रचीं समुचित रहीं ॥२॥

प्रणवपर्याय गिरि

卐

परमशिव कृपा

शिव शम्भु भीतर वस रहे सन्देह नहिं
वे दे रहे गति-मति सदा शुचि जहां कहिं।
रहते हुए हरिभक्त का आवास वह
तजते नहीं हैं कभी भी, अनुभूत यह ॥१॥

करते अचानक प्रेरणा, उनकी कृपा
जो भाव भरते शुभ्र वह महती कृपा।
बे बिन कृपा कब कृपासिन्धु रहे कहो
रहती बरसतो भक्तघर दिन रैन-जो ॥२॥

•

परम शिव : शिव संकल्प

तपोमूर्त्ति स्वामी श्री ओङ्कारानन्द गिरि जी महाराज आज के सन्त-समाज में अग्रगण्य महापुरुष हैं। अपने साधन-भजन, मनन-चिन्तन में निरन्तर निरत, स्वरूपतः परम शिव और व्यवहारतः शिव-संकल्पवान् हैं। अत्यन्त विरक्तिवान् होकर भी प्रपञ्चासक्त लोक-जीवन पर उनकी एक ऐसी करुणा-दृष्टि है कि 'नर्मदातट' को अपना कर्मपीठ बनाये हुए हैं। पन्द्रह वर्ष पूर्व उनके दर्शन का लाभ मुझे मिला। काशी में 'नर्मदा-पुराण' के प्रकाशन के लिए आये थे। उस समय जो सहजता उनकी प्रकट हुई, वह आज भी उसी प्रकार मुझे आकर्षित करती है। मैं उनके स्नेह और सौहार्द्र की कृतज्ञता स्वीकार करता हूँ। वे महापुरुष हैं, विद्वान् हैं, कवि हैं, तपस्या उनकी निधि है। वे 'यदृच्छालाभसन्तुष्ट' और 'विमत्सर' हैं। सनातन धर्म के मर्मज्ञ हैं। शांकर सिद्धान्त के पोषक हैं। साधुवर्ग के अवमूल्यन को लेकर चिन्तित हैं, उन्हें बार-बार उद्बोधित करते हैं—

बोले न सच्ची बात भी आचार में मन ना दिया।
सत् को नहीं साधा अहो, फिर साधु होकर क्या किया?

प्रायः लोग साधु-सत्पुरुषों के समीप पहुँच कर यह आम शिकायत करते हैं कि हमारा मन भजन और भगवान् में नहीं लगता। तब तपोमूर्ति जी बेवाक बोलते हैं—

अरे बाबा! खाने-पोने में, देखने-सुनने में, हँसने-बोलने में, नर का नारो में, नारी का नर में, बच्चों की बाढ़ में—प्यार में, मित्र के बनाव में, शत्रु के बिगाड़ में, कल-कारखानों में, खेत-खलिहानों में, किस्सा-कहानियों में, पुरजन-परिजन की निन्दा-स्तुति में, मन तो लगता है, पर नहीं लगता है तो भगवान् में और भजन में। इसका मूल कारण है भगवान् का आनन्दरूप न जानना।

विषय वासना ही इसे खींच रही दिन रैन।
हरि सुमिरन सन्तत करे पा जाता मन चैन॥

वे कहते हैं विषय-वासना के कारण तुम्हारे उपकरण में ही दोष आ गये हैं। उपकरण को शुद्धि को प्राथमिकता देते हैं। बुद्धि-शुद्धि पर बल देते हैं। कहते हैं आज का 'लोकसाहित्य' काव्यादि मादकता है, मापकता नहीं। मोदक भी है पर शोधक नहीं। प्रमोदक है पर प्रबोधक नहीं। भावमय होते हुए भी उसमें सद्भाव का अभाव है। वहीं दर्शन-

साहित्य मोक्षमार्ग प्रशस्त करता है। अतः हमें सद्-असद् बुद्धि का विवेक करना हो होगा। उपर्युक्त आशय का विवेचन पूज्य स्वामी जी ने अपने ग्रन्थ 'अपने आपको जानो' में पृष्ठ ६४ पर अभिव्यक्त किये हैं।

यदि मैं आपकी बहुमुखी प्रतिभा का विवेचन उनके ग्रन्थों के मोती चुग-चुगकर करूँ तो एक पोथी और प्रस्तुत हो जायगी। अब देखें उनकी एक नवीन रचना आपके समक्ष है। इसका नाम है 'परम शिव'। आपको 'शिव' 'शव' का भेद तो मालूम ही है, पर शिव और 'परम शिव' पर ध्यान कम जाता होगा! तो आइये, अब आप इस 'परम शिव' की भूमिका में प्रवेश करें।

कड़ी जो शान्तं शिवं अद्वैत की जुड़ी दिखलाई सतत तब क्या रहा!
घड़ी पूर्णानन्द की सब दिन लसो चाल जिसकी एकरस भासी महा!

यह 'परम शिव' नामक काव्यग्रन्थ परब्रह्म परमात्मा के पूर्ण स्वरूप को प्रकाशित करने के लक्ष्य की ओर अग्रसर है। हमारे सभी प्राचीन सनातन साहित्य की प्रणाली रही है कि अनेक नाम रूप में परमात्मा को अनाम, अरूप, अचिन्त्य होने पर भी प्रतिष्ठित किया गया है। उसे 'एक' कहकर उसकी अनेक प्रकार की व्याख्याएँ हुई हैं। 'एकं सद् विप्रा वहुधा वदन्ति'। हमारे वैदिक साहित्य का कण-कण शिव से ओतप्रोत है। स्वामी जी कहते हैं—

हे देव! तुम सब जगत् के नियन्ता व्यक्त क्या अव्यक्त जो रह जँह कहीं।
तत्त्व अन्तर वहिर रहता अणु महत् महादेव सिवाय दूजा कुछ नहीं॥

'परम शिव' इस भक्ति, ज्ञानमय काव्य के तृतीय खण्ड में—'शान्तं शिवं अद्वैतम्' का स्वरूप सुधी सन्त ने वर्णित किया है। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का चित्रण हुआ है, और बता दिया—'सत्य शिव सब हो गया'। शिव की अपार महिमा ही यह 'परम शिव' है। शिव के स्वरूप का विवरण किया—समाधिस्थ, साक्षी, परोक्ष, अपरोक्ष, परम सत्तावान, अनुभूति, स्मृति। वहुरूपधारी को, वेदों में विद्यमान देखा। शुक्ल यजुर्वेद की रुद्राष्टाध्यायी के पञ्चम अध्याय का तो इसमें तदनुरूप अनुवाद प्रस्तुत किया है। इस 'नमन' को पढ़ते समय सारे मूल मन्त्र मूर्त्तिवत् प्रकट हो जाते हैं। निश्चित ही इन मन्त्रों के माध्यम से शिव-मानस, परम शिव स्वामी श्री ओङ्कारानन्द गिरि जी महाराज को नमन करता हूँ। और भक्तजनों से निवेदन करता हूँ कि इन उपयोगी पदों का प्रयोग कर वेद-ऋचाओं का स्वारस्य ग्रहण करें इससे उनकी अर्चा-पूजा में सहयोग होंगे।

माघ शुक्ल वसन्त पंचमी —विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
सं० २०५१ सम्पादक : आनन्द बोध

धन्यवाद

विगत कई वर्षों से सहज विरागी मन निवृत्ति का लक्ष्य रखकर लिखने पढ़ने कहो पोथी के पन्ने उलटाते रहने से उपराम होता रहा। अनेकों बार अपने इष्ट मित्रों से भो यह सब पुस्तकों के प्रकाशन का भार अपने ऊपर न रखकर उन्हें सौंप देना चाहे 'ज्ञान सत्र प्रकाशन न्यास' तथा विवेक आश्रम न्यास से जुड़े रहने के कारण इससे अद्यावधि मुक्ति न मिल पाई।

भगवान् विश्वनाथ की अपार कृपा हुई कि हमारे अत्यन्त प्रिय एवं सम्मान्य पं० श्री विश्वम्भरनाथ द्विवेदी आनन्द कानन प्रेस के सर्वस्व पुनः हमें सम्प्राप्त हुए। वाराणसो में नर्मदा साहित्य जिन्होंने लगातार प्रकाशित कराया था हमारे आग्रह से तभी से हमने उनसे कहा था हमें यहाँ एतदर्थं बारम्बार आना-जाना न पड़े आप ही यह निष्काम साधुसेवा को अंगीकार कर लें तो हमें अत्यधिक शान्ति मिलेगी।

प्रसन्नता की बात है हमारे ये नूतन तीन क्या चार प्रकाशन इन्होंने बड़ी लगन और उत्साह से अपने सुयोग्य सुत श्रीशिवदत्त द्विवेदी को इसमें नियुक्त किया और स्वयं भी इस निबन्ध पर अपना वक्तव्य सुन्दर प्रकाशित कराया। इससे हमने यह मान लिया कि भविष्य में समस्त अपनी रचनाएँ इन्हीं की सम्पादकता में प्रकाशित होती रहेंगी उन्होंने स्वोकार कर लिया। इससे अत्यधिक उन्हें हमारी ओर से धन्यवाद साधुवाद क्या भगवान् विश्वनाथ का अनन्त आशीर्वाद भी सदैव प्राप्त होता रहे यही हमारी हार्दिक इच्छा है भगवान् से प्रार्थना है।

इसके साथ ही प्रेस के पवित्र कर्मचारी वर्ग ने भी बड़ी लगन से इसे प्रकाशित कराया एतदर्थ ये सभी धन्यवाद के पात्र हैं। किं बहुना। साथ ही हमारे प्रिय भक्त श्रीअनिल कुमार शर्मा जिन्होंने बड़ी लगन से यत्र-तत्र लिखी रचनाओं को संग्रहीत किया। मुद्रण लिपि समय पर सुसज्जित कर दी। उन्हें भी पूर्ण आशीर्वाद परमशिव की भक्ति प्राप्त हो यही अभिलाषा रखता हूँ।

ओंकारानन्द गिरि

अनुक्रमणिका

शान्तं शिवं अद्वैत—

शिवशक्तिमयं जगत्—

सत्यं शिवं सुन्दरम्—

यतो धर्मस्ततो जयः—

एकमेवाद्वितीयम्

उपसंहार

●

परम शिव

(भक्ति ज्ञानमय काव्य)

(तृतीय खण्ड)

शान्तं शिवं अद्वैतम्

ॐ शान्तं शिवं अद्वैतं शुभं
ॐ सत्यं शिवं शुभ्रं सुन्दरम् ।
ॐ त्रिविधं शान्ति शान्ति सुशान्ति ही
सुधी स्वान्तः सुखी ध्याते परम हो ॥१॥

कहे श्रुति शान्तं समृद्धं एक ही
अव्ययं अविनाशि आदि अनादि भी
शिवं शान्तं अक्षरं कहती तथा ।
ब्रह्म वह निर्दोष रह शिव सर्वथा ॥२॥

शिवं प्रशान्तं अमृतं ब्रह्मयोनि
शिवं तुरीयं वह यज्ञोपवीतम् ।
शिवं कहे श्रुति तदात्मपदं चतुर्थं
अद्वैत रूपं परमं हि पावनम् ॥३॥

भगवान अनुपम अनुपमा रह भगवती
नित सत्य शिव भासे तथा विघ जो सती ।
है चिदानन्दस्वरूप शिव चिच्छक्ति भी
रहें एक दो नहि परमशिव तात्विक तभी ॥४॥

कड़ी जो शान्तं शिवं अद्वैत की
जुड़ी दिखलाई सतत तब क्या रहा ।
घड़ी पूर्णानन्द की सब दिन लसी
चाल जिसकी एकर स भासी अहा ॥५॥

शान्तं शिवं अद्वैत व्यापक नित्य यह
शान्तं शिवं अद्वैत ब्रह्मात्मा रहा।
शान्तं शिवं अद्वैत तात्त्विक नित्य दृक्
द्रष्टा न दर्शन दृश्य की त्रिपुटी कहा ॥६॥

शान्तं शिवं अद्वैत तत्त्व प्रकाशता
शान्तं शिवं अद्वैत शिवमय भासता।
शान्तं शिवं अद्वैत सुन्दर है वसा
सभी घट में भानु सम तमको नसा ॥७॥

ध्येय शान्तं शिवं अद्वैतं चरम
श्रेय शान्तं शिवं अद्वैतं परम।
ज्ञेय शान्तं शिवं अद्वैतं सु-सम
कहा जिसको ब्रह्म सम निर्दोषतम ॥८॥

जान शान्तं शिवं अद्वैतं महत्
भान शान्तं शिवं अद्वैतं वृहत्।
मान शान्तं शिवं अद्वैतं अमृत
सुधी जीवन्मुक्त ज्ञानी कँह सुहृत् ॥९॥

सत्यं शिवं सुन्दरम्

सत्य शिव नित भाय सुन्दर परमप्रिय
स्वयं रह शिव रूप शुभ आनन्दमय।
अस्तित्व अपना भासता सुखरूप जो
सत्य शिव सुन्दर पदास्पद की विजय ॥१॥

भूमिका प्यारी सदाशिव रूप की
भा रहो सबको प्रिया सच्चिन्मयी।
सत्य शिव सुन्दर विशद वाणी अमर
गगन में रह गूंजती मंगल मयी ॥२॥

हो रही अनुभूत सच्चित् की धरा
शान्त शिव अद्वैत आत्म तुरीय पद।
वेद वर्णित तत्त्वमसि का लक्ष्य यह
स्वयं सत्यं शिवं सुन्दर सुखद पद ॥३॥

है इकाई सत्य की निज की कहो
है इकाई ईश की शिवरूप जो।
है इकाई परम सुन्दर वस्तु की
जीव ईश्वर ब्रह्म चेतन एक जो ॥४॥

सत्य शिव सब होगया

ज्ञान आवश्यक मनुज को सर्वथा
धर्म का सत्कर्म का पुरुषार्थ का।
सत् असत् का त्याज्य एवं ग्राह्य का
हित अहित का ज्ञान जीवन मरण का ॥१॥

ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय के व्यवहार का
होगया परमार्थ पथ का ज्ञान भी।
साध्य साधक सिद्ध का भी लख पड़ा
रह गया क्या शेष पाना कहीं भी ॥२॥

सत्य शिव सुन्दर विलसती सृष्टि जो
दृश्य दर्शन दृष्टि क्या फिर अशिव यह।
ग्राह्य क्या रह त्याज्य भी का प्रश्न कुछ
नहिं शुभाशुभ हित अहित कुछ शेष रह ॥३॥

शोधते सब सत्य पाते कहीं कुछ
दें दुहाई सत्य की भोले मनुज।
शिव अशिव सुन्दर असुन्दर भी लखे
सधें मिथ्या कौन दैवत को दनुज ॥४॥

सदा शिव

सदा शिव सब काल में शिवं ही रह
सदा शिव सबदेश में भी छा रहे।
सदा शिव सब व्यक्तियों में झूमते
कौन कब शिव से विलग ये भा रहे ॥१॥

सहज स्वाभाविक समाधि सधी रहे
कामनाओं की सतत होली दहे।
गहे अन्तर्मुखी अन्तर्यामिता
रहे परमानन्द में निज पद लहे ॥२॥

राम का भजना यहीं आराम से
विना आत्माराम के आराम कँह।
आरम जो राम लखता स्वयं में
रह निहाल निहार स्वात्माराम तँह ॥३॥

शिवं सत्यं सुन्दरं क्या और है
यही शान्तं शिवं रह अद्वैत भी।
श्रुति तथा गुरुकी लखाई युक्ति भी
छागई अनुभूति रह क्या शेष हो ॥४॥

हो रही जो क्रिया कोई देह से
इन्द्रियों से प्राण से मन से तदा।
क्या न पूजा होयगो शिवकी तभी
जो रमे इनमें शिव रहे जो सर्वदा ॥५॥

शिव की अपार महिमा

शिवं शान्तं एक अद्वैतं तथा
लखे आत्मा को प्रथम अपरोक्ष भी।
लगे सोऽहं शिवोऽहं कहने तभी
कोइ शिव शिव नाम लेते रँह अभी ॥१॥

समझ कर कल्याण कारी कहें शिव
हरें जनके पाप हर हर कर रहे।
तर रहे भव से यहाँ भव-भक्ति कर
सुखी होते मृड मृडेति इसे कहे ॥२॥

नाम रूपों को अमित महिमा रही
रहे शिवके नाम लोक प्रसिद्ध ही।
रूप धारे क्या न शिवने तव अमित
करे नामावली का जप भक्त नित ॥३॥

हैं असंख्यों सहस्रों शत नाम भी
कहें एकादश हुए हैं रुद्र भी।
अष्टशत अवतार विविध प्रकार से
पञ्चमुख परमेश के सब ही लसे ॥४॥

कहीं द्वादश लिंग ज्योतिर्मय रहे।
पञ्च तत्वात्मक प्रसिद्ध कहीं रहे॥
मूर्ति अष्टक क्या न सब ये हैं अमित।
भले इनके नाम कोई लखे मित॥५॥

कब असीमित हुआ सीमित कहें भी।
नाम रूप उपाधि से परिछिन्न हो॥
मान लेते पर उपाधि न नित्य रह।
हुई परिचायक उपाधि न संग रह॥६॥

कभी शिवगुण धर्म उसके ना गहे।
तदपि उनका नाम ले जन तर रहे॥
रूप भी ध्याते हृदय में सुधी जन।
ज्ञान पाते वास्तविक इनसे सुजन॥७॥

भूमिका अध्यात्म की सब सज रहे।
वेद शास्त्र पुराण आदिक सब कहे॥
गा रहे हैं गीत उनके साधु भी।
गुणों का नहि पार पर पाए कभी॥८॥

भक्ति से ही ज्ञान उनका मिल रहा
भजें तत्त्वज्ञान पाने के लिए।
सुधी सब आरोप उनमें कर रहे
तदपि शिव रह एक यह धारे हिए॥९॥

नाम रूप अनन्त नामी एक नित।
भक्त बहुविध ध्याय रूप स्वरूप नित॥
एक ही जीवात्म और परात्म का।
सदा अन्तर्यामि प्रत्यग् आत्म का॥१०॥

सभी शिव

ज्ञान इच्छा क्रिया आदिक शक्तियाँ।
नाम रूप प्रभावमय अभिव्यक्तियाँ॥
प्रकृति के गुण धर्म या कि स्वभाव भी।
क्या न शिव का लिए आश्रय रह सभी॥१॥

दिव्यता देवत्य दैवी विभव भी
रह रहा अधिदैव में द्यौलोक भी।
भूत भौतिक धरा रह अधिभूत में
छटा सारी शिवमयी अध्यात्म में ॥२॥

भुवन चउदह शक्ति के आश्रित रहे
पिण्ड क्या ब्रह्माण्ड रह सब उसी में।
स्वयं भी रह अधिष्ठान समाश्रिता
ब्रह्म चेतन एक शिव स्वरूप में ॥३॥

तव सभी कुछ शिवं शान्तं ही रहा।
एक ही अद्वैत जो केवल कहा ॥
रहा रहता आय रहना है सदा।
नाम लेते भक्त कोइ यदा कदा ॥४॥

नमन करते सुधी रुद्र स्वरूप को
नमे अगणित रूप में शिव को सदा।
सर्व रूप स्वरूप में शिव एक ही
जपें शत रुद्रीय भी ज्ञानी तदा ॥५॥

समाधिस्थ-शिव

शिव समाधि लगाय के करते शयन
सभी प्राणी मात्र में यह उचित ही।
रहा वो न समाधि में, गुण धर्म सब-
व्याप्त हों संसार के तब वे सभी ॥१॥

शिव आत्म रूप स्थित रहे यह भी यहां
सिद्ध है, सर्वात्म भाव सधा तभी।
आत्म शिव रह शक्ति ज्ञानमयी शिवा
बुद्धि वह हुइ सभी में भासे जमी ॥२॥

बुद्धि में आभास शिव का हो रहा
तभी तो यह जीव कहलाने लगा।
वस्तुतः शिव वहां कुछ करते नहीं
स्वयं में ज्यों रवि प्रकाशित सा लगा ॥३॥

रहें सब में सभी से शिव पृथग् हैं
भले तुम आभास मानो या कि शिव।
बिम्ब या प्रतिबिम्ब की प्रक्रिया में
अवच्छेदक मतों में रँह सदा शिव ॥४॥

लोक में परलोक में जँह कहीं भा
कहां नहि शिव सर्व व्यापी जो रहे।
भूत और भविष्य में वर्तें अभी
बिना शिव क्या अशिव नहि होता कहे ॥५॥

सधी रह सर्वात्मता शिव की सदा
भुवन मंगल तभी तो शिव हो रहे।
शिव बिना को अमंगल हर रहा
हर हरेति हरेति तब ही शिव कहे ॥६॥

लखें भीतर तथा बाहर शिव जभी
सभी भासे सृष्टि सुन्दर शिवमयी।
ज्ञान शिव का हर रहा अज्ञान सब
नीति सुन्दर क्या प्रगट होगी नयी ॥७॥

रीति भी शिव-प्रीतिमय अच्छी लगे
भीति नहि रहती किसको शिव शरण।
प्रीति अपने आप में शिव रूप जो
होय शिव शिवभक्ति जन तारण-तरण ॥८॥

सदा साक्षी शिव

कब सदा शिव की न सत्ता रही है
सर्वदा शिव महाकाल सुहा रहे।
सत्य शिव रँह शान्त शिव को नित्य ही
निगम आगम सभी इनको कह रहे ॥१॥

देव में वह दानवों में भी बसे
बसे रँह शिव भक्त और अभक्त में।
पुण्य में भी पाप में भी शिव रहे
हुए साक्षी कहो धर्म अधर्म में ॥२॥

लोक हो परलोक स्वर्गादिक कहो
दशों दिशि में छा रहे शिवजी सदा।
भाव और अभाव में साक्षी वही
शिव शिवाय न कोइ त्रयकालिक सधा ॥३॥

बसे कण-कण में रँहें वह ईश शिव
देंय सत्ता निजी सबको वह जभी।
हेय तब क्या होय शिव से समन्वित
सर्व व्यापी अन्तरात्मा शिव तभी ॥४॥

तभी जीवन प्राणियों का सज रहा
लगे प्राणीमात्र को प्रिय सुखद भी।
रहे मंगलमय मुदित मन इसी से
शिव अशिवता नस रहे जन की सभी ॥५॥

परोक्ष भी शिव

प्राय देव परोक्ष प्रिय माने गये
इन्द्रियों के विषय वह मत हों न शिव।
रूप उनका दृष्टि गोचर सभी के
होय नहि, पर रहे नित्य स्वरूप शिव ॥१॥

जिस किसी भी लोक में वसते हुए
लोकते हैं दिव्य दृष्टि जिन्हें मिली।
अहो! शिव की वह अलौकिक छवि लसे
तदपि दर्शन से हृदय कलिका खिली ॥२॥

नाम शिव-शिव ले रहे हैं भक्तगण
प्रेरणा पाकर उन्हीं की मुदित रँह।
दृष्टि व्यापक वस्तु पर पड़ती नहीं
शिव परोक्ष लखाँय विभु को गहन तँह ॥३॥

रँह परोक्ष तभी न जग अन्धा हुआ
रहा अज्ञानी बड़ा शिव को न पा।
भटकता रह ढूंढ़ता उनको फिरे
भले आस्तिक हुआ भी वह बिन कृपा ॥४॥

पाँथ शिव को नहीं शिव ओझल कहें
तभी मान परोक्ष ध्यान लगा रहे।
प्रगट होते अनुग्रह शिव ने किया
ध्येय रूप लखा गये क्षण में कहे ॥५॥

अपरोक्ष शिव

हो रहे अपरोक्ष शिव ज्ञानी कहे
आत्म वह परमात्म वह होकर लसे।
भासते जब शिव तिरोहित कब हुए
डाल डेरा हिए मे जो ये बसे ॥१॥

बिना इन्द्रिय-करण के अपरोक्ष शिव
रहे हैं अनुभूत वे सब रूप में।
शब्द से भी हो रहे प्रत्यक्ष शिव
ज्यों कि दसवाँ तू हुआ अनुभूति में ॥२॥

शिव सधें ध्यानादि में अपरोक्ष नित
भाँय शिव सुख रूप से अपरोक्ष वह।
रमें शिव सब घटों में चिच्छक्तिमय
चेतना अपरोक्ष शिव की सदा रह ॥३॥

भान में शिव ज्ञान में आनन्द में
रहे तन मन में जनों के शिव यहाँ।
हो न जो अपरोक्ष शिव का जहँ कहीं
अन्धकार सदैव छा जाए वहाँ ॥४॥

बिना शिव अपरोक्ष भीतर अमंगल
बना रहना सिद्ध जो न अभीष्ट कँहि।
अतः मंगलमय सदाशिव भारहे
नित्य अनुभव गम्य होंय परोक्ष नँहि ॥५॥

परमसत्तावान शिव

सदा सत्तावान् शिव केवल रहे
पारमार्थिक सत्त्व शिव का सध रहा।
व्यावहारिक जो जहाँ सत्ता लखे
प्रातिभासिक सधो शिव से ही कहा ॥१॥

त्रिविध सत्तावाद शिव से सिद्ध है
ब्रह्म चेतन एक शिव तहँ भासते।
अधिष्ठान स्वरूप शिव सद्रूप रँह
स्वयं ज्योतो रहे सभी प्रकाशते ॥२॥

निग्रह अनुग्रह सभी पर शिव कर रहे
कर हलाहल पान रक्षा शिव किये।
सत्त्व सब का सधा शिव से तभी तो
कृपा पाकर देव दानव है जिये ॥३॥

मैं बड़ा नहि तुम बड़े विधि हर जभी
थे विवादी प्रगट ज्योतिर्मय तभी।
शिव अनुग्रह किए दोनों लड़ो क्यों
हाथ मेरे कहे दोनों शिव तभी ॥४॥

पाय सत्ता दोउ मुझसे उपजकर
सृजक पालक हो रहे हो इसीसे।
हो गया संहार कारक रुद्र भी
हो अभय सत्ता सभी की मुझी से ॥५॥

अनुभूति में शिव

एक शिव की हुई है अनुभूति नित
ज्ञान दृष्टि सदैव रहती सात्विकी।
वही सत्यं शिवं रह वह सुन्दरम्
कहें ईश्वर वृत्ति जिनकी सात्विकी ॥१॥

पारमार्थिक तत्त्व केवल रहा शिव
सभी का कल्याणकारी आत्म जो।
हुआ वह परमात्म ब्रह्म स्वरूप ही,
शिव यथार्थं महेश रह अद्वैत सो ॥३॥

हो रही अनुभूति जाग्रत स्वप्न में
गाढ निद्रा में विशुद्धानन्दमय।
ध्यान और समाधि में भी वसा वह,
लखें जन उसको सदा रहते अभय ॥२॥

उपनिषद् सब उसे ही है साधते
तथा आगम शास्त्र दर्शन भी सभी।
अस्ति ईश्वर भाति शिव प्रिय रहा है
सगुण होते हुए निर्गुण रह तभी ॥४॥

ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय में शिव हैं सदा
ध्यान ध्याता ध्येय में अनुभूत हैं।
वर्तते शिव सदा नित्य स्वरूप से
सभी विध अनुभूतियों में शिव रहें ॥५॥

स्मृति में शिव

रँह सभी स्मृतियाँ सभी की शिवमयीं
भक्तजन दिन रैन सुमरन कर रहे।
वसे हिय में नाम ले लेकर तभी
जपें माला आदि कर में ये गहे ॥१॥

पर्व व्रत शिव रात्रि मय सब हो रहे
जिस किसी भी भाँत शिव संस्मृत रहें।
यही निश्चय राख मन में सुमरते
साधुजन साधक सभी प्रमुदित रहें ॥२॥

स्मृति सदा शिव की सुपावन कर रही
जीव को क्या जगत् को वह तारती।
संकटों से तभी शंकर नाम शिव
हर रहे हर ताप वृत्ति सुधारती ॥३॥

तभी तो हितकर सदा शिव संस्मृती
अहित उनका ही यहाँ प्रायः लखें।
जिन्हें विस्मृत हुए शिव संसार में
क्या न आपद विपद में वे पद रखें ॥४॥

स्मरण शिव का किये पूर्व महर्षिगण
रचे शास्त्र पुराण वा स्मृतियाँ सभी।
ज्ञान संस्मृति आदि शिव से सिद्ध हों
स्मरण करते रचे शिव आयतन भी ॥५॥

चारों वेदों में शिव

ऋग्वेद प्राय ईश की स्तुति परक
अग्नि कँहि इन्द्रादि नामों से तथा।
यजन पूजन यज्ञ यजुओं से करें
नमस्कार प्रणाम बहुविध रह तथा ॥१॥

यज्ञ भी नाना अलौकिक रह रहे
यजन उनसे ईश का ही हो रहा।
देवता के भेद से आराधना
कहो पूजन सभी ईश्वर का रहा ॥२॥

साम द्वारा गान करते ईश का
अतः गीति प्रधान वह माना गया।
रँह सभी ये वेद ईश्वर निरूपक
तत्त्व केवल एक शिव पाया गया ॥३॥

शिव-माहात्म्य

माहात्म्य शिव के नाम का अत्यधिक है
जप योग्य शिव के रँह अनेको नाम हैं।
जावाल कैवल्योपनिषदों में इन्हें
अमृतत्व कहिए मुक्ति का साधन कहें ॥४॥

रह रुद्र का अध्याय पञ्चम अतिविशद
तँह कर्मकाण्डी होम उनसे कर रहे।
पर तत्त्व वेत्ता ज्ञान का साधन कहें
वहाँ शतरुद्रीय शिव नामों से गहें ॥५॥

पाठ जिसका किये होता ज्ञान है
रहा जो भव सिन्धु तारक सदा ही।
सिद्ध जिससे हो रहा कैवल्य पद
अति महत्ता नाम जप की रह सही ॥६॥

शक्ति रह संहार कारक ईश की
भय सदा जिससे बना रह जीवको।
घोर तनु शिव का निरख तब देव को
रँह मनाते तभो क्रोधित मूर्ति को ॥७॥

घोर तनु को त्याग सौम्य स्वरूप हों
वसो धारा घृतमयी हवनादि से।
छोड़ते करते प्रसन्न महेश को
नमन करते अभय याचें इसीसे ॥८॥

बहुरूपधारी शिव

रह परम स्वातन्त्र्य शिव का कुछ कहें
करें निग्रह अनुग्रह वहुरूप-धर।
धार कर वह यक्ष का तनु प्रगट थे
हुए मोहित देव इन्द्रादिक प्रवर ॥१॥

नट वेश धरते हुए ऋषि पत्नियाँ
किए मोहित सभी का व्रत भग्न था।
भिल्ल वन के कभी मोहित पार्थ को
किए लीला युद्ध की हर्षे तथा ॥२॥

बीज भैरव देह धर गिरिजा तभी
वेष वे भी धार गणपति को जनीं।
इन्द्र सा कँहि रूप धर के मृत्यु को
किये लीला डिगाने शिवजी घनीं ॥३॥

बाल का धर रूप गिरिजा गोद में
आ विराजे वे कभी अति मोद से।
कँहि उलूक शरीर धर ऋषि को तभी
ज्ञान का उपदेश शिव देते उसे ॥४॥

धार वपु उन्मत्त सा देवांगना
तभी प्रजनन शक्ति शिव की लखी वे।
रह अलकृत वहाँ वे दिखला दिये
जगत कारण एक शिव बोधित किये ॥५॥

कँही शिव होते शिला से प्रगट झट
कहीं आहुति भू विवर में जा पड़ी।
धार तनु तत्काल कर लते ग्रहण
अहा शिव की मूर्ति सन्मुख रह खड़ी ॥६॥

रुद्र के रँह अति विचित्र चरित्र सब
गोप्य अति गम्भीर भी शिव लख पड़े।
कहीं ब्रह्मादिक न पाए पार हैं
अतः उनको नमन करते रँह बड़े ॥७॥

घोर शिव के तनु रहे कि अघोर भो
कहो सौम्य असौम्य वर्णित हुए हो।
योगि भूषण रहे सर्पालंकृती
अस्त्र धारें बड़े तीक्ष्ण शिव कभी ॥८॥

स्वर्ण आभूषण हिरण्यमय बाहु भी
बाण छोड़ें अभय मुद्रा भी कभी।
दृष्टि सम रखते विषम लोचन कहे
चिता भस्म लगाँय गंगाधर रहे ॥९॥

रहा विषधर अमृत मय शशि शीष पर
रहें भोले बड़े वरदानी विकट।
कहीं भाले से लखाते शिव अहो!
शुभ अशुभ का भेद नहि शिव के निकट ॥१०॥

अपरोक्षता शिव

शिव आत्मा की आत्मा परमात्मा
जागतिक जो ईश का भी ईश रह।
तभी कहलाया महेश्वर परम भी
रह सदा अपरोक्ष शिव परमात्म यह ॥११॥

देन सबसे बड़ी रह वेदान्त की
कहे जो अपरोक्षता ब्रह्मात्म की।
रहा शिव हृदयेश होकर सर्वका
हित शिवोऽहं में निहित है सभी का ॥१२॥

शिव नाम महिमा

शिव सदा कल्याण रूप यहाँ कथा
श्रेष्ठ विद्यावृत्ति में श्रुति भी तथा।
तँहा रुद्राध्याय अति उत्तम कहा
वहाँ भो शिव नाम सर्वोत्तम रहा ॥१॥

अमित महिमा भी सधो शिव रूप को
अक्षर द्वय नाम शिव सर्वातिशय।
प्रणव अक्षर विना 'नमः शिवाय' भी
मन्त्र पञ्चाक्षर विशद यह निरतिशय ॥२॥

प्रगट पञ्चावयव प्रणवाक्षरों के
है अकार उकार और मकार भी।
नाद विन्दु तथैव इनसे हुए थे
पंच सद्योजात आदिक मुख सभी ॥३॥

वामदेव अघोर एवं तत्पुरुष
कहे हैं ईशान नामक वेद में।
इन्हीं से उच्चरित नमः शिवाय तव
मन्त्र पञ्चाक्षरी प्रगटा धरा में ॥४॥

जपा विधि हरि ने इसे सर्व प्रथम,
प्रगट ज्योतिर्मयी थी शिव की कला।
मान दोनो का रखा परमेश ने
तब बड़प्पन वहाँ दोनों का फला ॥५॥

मन्त्र जापक विचरते रँह दश दिशा
हृदय में रख ध्यान पशुपति का तथा।
भाग्यशाली हुए पञ्चाक्षरी से
अहो! जीवन्मुक्त यति गण सर्वथा ॥६॥

शिव से वेदों की महत्ता

वर्ण चारों आश्रमादिक चार ये
लोक तीनों काल भूत भविष्य भी।
अन्य कोइ प्रमाण से लखते नये
वेद से ही सिद्ध धर्म अधर्म भी ॥१॥

अतः वेदाभ्यास विप्रों के लिए
हो बड़ा तप मनोयोग किये जहाँ।
कहो वेद विचार उत्तम धर्म है
कहे हैं राजर्षि मनु सबमें महाँ ॥२॥

ग्यारहवाँ अध्याय गीता का यथा
विश्वरूप लखाँय हरि जैसे वहाँ।
कहा जाता तथा रुद्रा-अध्याय भी
कृष्ण यजु अध्याय ग्यारहवाँ यहाँ ॥३॥

रही शिव की सर्वरूप स्वरूपता
सभी शिवमय कह रहा शतरुद्र ही।
रुद्र एकादश कि संख्या दोय की
साम्यता अध्याय की रहती सही ॥४॥

रँह सहस्रों पाद अक्षि शिरस्तथा
कहे गीता हैं भुजाएँ भी अमित।
विश्वरूप तथैव शिव के रूप भी
अष्टमूर्ति प्रसिद्ध तात्विक रहे नित ॥५॥

एक शत अध्याय शाखा यजुर्वेदीय रह
रुद्रकी उपनिषद् तँह वर्णित रही।
कही शतरुद्रीय यह सर्वोत्तमा
किए जप सब पाप होय विनष्ट ही ॥६॥

वसुमना राजर्षि तप सौ वर्ष तक
जपे गायत्री न मन जब शान्त ही।
लिए शत रुद्रीय का आश्रय जभी
हुए थे निष्पाप क्या कृत कृत्य ही ॥७॥

मिला था उपदेश यजु का सार यह
रहा शत रुद्रीय उत्तम नाम गह।
सतत करते नमन बारंबार वह
साधना उनकी सफल हुइ तभी वह ॥८॥

अंग धारे भस्म हरि जप किये थे
पाठ शत रुद्रीय का करते रहे।
श्री कृष्ण जल में खड़े रह के जभी
कोटि शत रुद्रीय जप करते रहे ॥९॥

नमन

नमन हरि को किये जन मन हो हरण
हर न तब क्या पाप से तारण तरण।
सिद्ध होते, नाम हरिहर लिए जो
मन रहे वह कहाँ जन कह न मन सो ॥१॥

'मनः' के विपरीत रहता 'नमः' पद
मन मरोड़े होय पुन पुन नमन पद।
नमन पद का मनन करते मन न भी
होय पर रह अर्थ तब भी मन न ही ॥२॥

नमन की महिमा अमित रह नाम में
सभी भगवत नाम के सँग जो रमें।
कहें भक्त शिवाय नम कि हराय नम
हरि हराय नमः कहें कि असंख्य तम ॥३॥

हुई शत रुद्रीय तब ही शिवमयी
विश्वरूप प्रभाव अतिशय रह तहाँ।
सहस नामावली लोक प्रसिद्ध हुइ
नमन करने के लिये पूजित यहाँ ॥४॥

रह अलौकिक याकि लौकिक नाम वे
हैं शिवाश्रित जो कि होंय उपाधि से।
अर्थ उनका एक केवल शिव रहे
लखे पूर्ण समाधि में योगी जिसे ॥५॥

परमेश्वर को किये असंख्यों नमन तभी तो
नमो वाक या नमक नाम अध्याय हुआ सो।
इन मन्त्रों के गायक शिव को अतिशय प्रिय हैं
नमः शिवाय यहीं पञ्चाक्षर रहा कहे हैं ॥६॥

मन्त्रों को दुहराते रहना बड़ा ध्यान है
नामों का मन के चिन्तन से होय ज्ञान है।
किये मूल का सिंचन शाखा पुष्ट होय है
शिव के हुए प्रसन्न देवगण सब प्रसन्न हैं ॥७॥

घोर मूर्ति शिव कँहि अघोर भी कहे जांय हैं
निग्रह और अनुग्रह कारक उग्र सौम्य हैं।
रँह प्रसन्न गुरु मूर्ति दक्षिणा मूर्ति सदा शिव
नील कण्ठ शिति कण्ठ शान्त हैं साम्ब सदा शिव ॥८॥

कालान्तक प्रलयंकारी शिव मृत्युंजय भी
मदनान्तक हर सर्व चराचर उभय रूप भी।
भोले भाले बं बं शंकर सब पहचानें
गाल बजाते हों प्रसन्न तब ही जग मानें ॥९॥

नमो नमः करते रहने से पूजा होती
नमो नमः से पूर्ण वन्दना संस्तुति होती।
नमो नमः से अहं भाव नस जांय शीघ्र ही
सरल सभी विध नमस्कार से विधि विधान भी ॥१०॥

देव दनुज गन्धर्व शान्त ऋषि मुनि ज्ञानी भी
नमस्कार शिव को कर करके बाल वृद्ध भी।
विद्या विभव ज्ञान भी पाये भोग मोक्ष भी
शत रुद्रीय रहे अपनाए चार वेद भी ॥११॥

वेदों में शिव स्वरूप

(रुद्राष्टाध्यायी का पाँचवा अध्याय)

हे रुद्र तेरा मन्यु = कोप रहा कि जो
उसको नमन मैं कर रहा तव वाण को।
जो रह धनुष उसको तथा मैं नमूं हूं
उन दोय से युत करों को भी नमूं हूं ॥१॥

हे देव तब वह घोर तनु उसको नमूं
रँह कोपकारी उपकरण सबको नमूं।
वे वैरियों पर ही प्रयुक्त हुआ करें
मुझ पर न छोड़ें कृपा वस इतनी करें ॥२॥

हे शिव तुम्हारे होंय शिवतम शान्ततम
वे वाण आयुध धनुष आदिक शुभ्रतम।
उनसे सदा हम सभी को सुख दीजिए
हे शम्भु सुखकारी उन्हें अब कीजिए ॥३॥

हे रुद्र घोर अघोर हों तनु सर्वदा
पाप प्रकाशक होंय नँहि हिंसक सदा।
रह दिव्यतम कैलास गिरि पर शान्तिदा
वह ही प्रकाशें गिरिश हे सुखदा सदा ॥४॥

जो वैरियों पर छोड़ने को वाण वे
धारे उन्हें शिव शान्त कर दें अभी वे।
हे गिरिश पालक आप हैं हम सभी के
जन के जगत के हों न हिंसक किसी के ॥५॥

हे गिरिशयन अच्छा भला लखने तुम्हें
मंगलमयी हम वाक् से संस्तुति करें।
जैसे बने पशु सभी परिजन अचर चर
हों रोगहीन समस्त प्राणी वह करें ॥६॥

सब देवों से श्रेष्ठ देव के हितकारी हो
भव रोग निवारक वेद प्रकाशक तुमही हो।
प्रत्यक्ष और अनुमान जँहा असफल रहते
वेद रूप से उनका शिव प्रतिपादन करते ॥७॥

जो रहें बाधाएँ तुम्हारी प्राप्ति की
वा सिद्धिओं के लोभ को शिव ! परिहरें।
रँह जो अधोगति हेतु कामादिक मलिन
उन वृत्तियों को दूर भी हमसे करें ॥८॥

रह विषय की आसक्ति विषसम विषमतम
रहना मरुपादिक विषय भी घोरतम।
रँह आप देवों में चिकित्सक श्रेष्ठतम
वह हनें क्रूर स्वभाव के जो कर सु-सम ॥९॥

जो सूर्यं मण्डल में अवस्थित रुद्र रँह
वे लाल भूरे ताम्र र्वणिक माँगलिक।
हैं रश्मिरूप अनन्त दश दिशि छा रहे
लख हम कुपित सा करें संस्तुति सार्वदिक ॥१०॥

रह अँधेरा घोरतम अज्ञानमय
दुःखरूपी शीत भी हरते जभी।
रुद्र ही आदित्य हो प्रगटे यहाँ
भुवन मंगल को नमन करते तभी ॥११॥

उदयास्त रवि में लाल नीले कण्ठमय
गोपाल भी जिनको लखें पनहारियाँ।
गो महिश प्राणी नित्य प्रति दर्शन करें
रवि रुद्र की सुखकारि होंय विभूतियाँ ॥१२॥

हों वही नीलग्रीव इन्द्र स्वरूप भी
होते सहस्रों नेत्र के पर्जन्य भी।
हो वृष्टि कर्ता दयाकर्ता रुद्र भी
जो भी तुम्हारे गण उन्हें हो नमन ही ॥१३॥

ऐश्वर्यशलिन् न हे प्रभो! धनु पर चढ़ी
दुइ कोटियों पर बँधी डोरी छोड़ लें।
जो वाण हाथों में उन्हें भी त्याग दें
संहार जग का करें ना व्रत धार ले ॥१४॥

शिव ये सहस्रों नेत्र क्या तूणीर हैं
जो वाण रखने के निषंग कहे गये।
डोरी रहित करके धनुष वा वाण की
अवधिसें नोकें शान्त मुझपर होइए ॥१५॥

होवे जटाधर का धनुष बिन डोर का
हो तीर वा तूणीर वह असमर्थ ही।
रह वाण वाला भले तब भी वृथा सा
हो वाण धारी कार्यकारी नहि सही ॥१६॥

हे काम वर्षक प्रवल सेचक हाथ में
आयुध धनुष खडगादि तेरे रहें वे।
उन सब उपद्रव हीन अस्त्रों से हमें
पालें सभी विध दूर रखकर भयों से ॥१७॥

इन अप्रसारित आयुधों को हो नमन
हे शिव ! सुदृढ़ होते हुए वाणादि को।
होवे नमन दोनों भुजों को धनुष को
मेरा सदा शिव ! रह नमन ये आपको ॥१८॥

हे रुद्र पीड़ा धनुष से या वाण से
जो शूल सी चुभती उसे सब ओर से।
अब दूर करदें कभी बाधा होय ना
या होंय मेरे शत्रु उनमें जा घसे ॥१९॥

हे रुद्र बूढे बड़ों की हिंसा न हो
नहि बालकों युवकों नहीं गर्भस्थकी।
माता पिता के देह की तापादि से
पीड़ा न हो रक्षा करें हमारे प्रियोंकी ॥२०॥

हे रुद्र शिशुओं को न गौओं को नसें
नासें न अश्वों को न वीरों को कभी।
ना हो हमारी आयु कम संस्तुति करें
हम हविष लेकर भक्तिमय उपहार भी ॥२१॥

संस्मरण करते हुओंपर नहि क्रुद्ध हों
जो विहित का आचरण कुछ करते नहीं।
उन पर कुपित नहिं रुद्र हों निज जनों पर
वस भाव ही शिव ग्रहण करते सब कहीं ॥२२॥

नमो नमः

हे शिव हिरण्य सुवर्णमय बहुविध लसे
श्रुतियाँ नमन करतीं अनेकों नाम से।
वे कहीं सेनानी लखें दिक्पाल भी
अधिभूतमय अधिदेवमय वर्णन सभी ॥१॥

संसारमय यह वृक्ष भी तुम सोहते
हरि केश व्यापक विष्णु के वह केश से।
हैं जो वनस्पति वर्ग में हरिताभ से
हो पर्ण रूप कि रुद्र तुमको नमस्ते ॥२॥

जब सभी शिव रूप है तब हों सदैव नमो नमः।
हर रहो हरि हर रहो हे देव! तुम्हें नमो नमः॥

बाल तृण में लाल पीले से लसे
दीप्तिमान तथैव रह तव मूर्ति वह।
उत्तरायण दक्षिणायन मार्ग के
हो विधायक तुम्हें देव नमोऽस्तु यह ॥३॥ जब सभी०

कपिल पिंगल वर्ण वाले रुद्र हे
द्वेषियों को वाधते वृष को नमः।
अन्न जो अदनीय खाने योग्य है
हुए पालक जीवके तुमको नमः ॥४॥ जब सभी०

तुम्हीं हो हरिकेश नीले केश के
मंगलार्थक धारते उपवीत भी।
पुष्ट जो परिपूर्ण गुण से रह पुरुष
सर्वस्वामी हम तुम्हें नमते सभी ॥५॥

हो नमः संसार छेदक रुद्र को
जगत पालक भी तुम्हें होवे नमः।
धनुष विस्तृत धारते तुमको नमः
क्षेत्रपालक देहरक्षक हो नमः ॥६॥ जब सभी०

सारथी भी रथी भी तुमको नमः
हुए आत्मा रथी सारथि बुद्धि जो।
रोपते पादप तुम्हीं होवे नमन
काटते हो जगत वन रह नमन सो ॥७॥

राज मन्त्री हुए शिव तुमको नमः
वणिज कर्ता भी तुम्ही होवे नमः।
गिरि नदी नद वनों का जो वर्ग है
रहो स्वामी तुम्हें नित्य नमो नमः ॥८॥ जब सभी०

भुवन विस्तारक तुम्हीं हो रह नमः
धन सभी विध अर्जते को हो नमः।
हो वनौषधि अन्न आदिक के तुम्हीं
देवः! पालक सभी के तुमको नमः ॥९॥

गर्जना करते हुए युद्धादि में
शत्रुओं को रोधते तुमको नमः।
सैनिकों के रहे पालक रुद्र हे
देव सेंबापते ! तुम्हें नमो नमः ॥१०॥ जब सभो०

सैन्यको घेरे रहे होवे नमः
भागती परकीय सेना के तथा।
पड़े पीछे नमूं तुमको रुद्र हे
पालते शरणागतों को नस व्यथा ॥११॥

सहन करते देव तुम्हें नमो नमः
ताड़ना देते हुए को भी नमः।
सभी विध जो शत्रु सेना को बदले
देव उसके रहो रक्षक हो नमः ॥१२॥ जब सभो०

पाप हरते ताप हरते हर कहे
शिव हरें सर्वस्व तस्कर बड़े ये।
धनजनों का पञ्च कोषों में निहित
'दा' हरें सोऽहं लखाँय तहाँ किये ॥१३॥

छिपे रहकर करें चोरी स्तेन वे
रहे उन्नत वहाँ उनके पति हुए।
देव ! धारे धनुष तरकस वाण भी
तस्करों के पति नमन सब विध हुए ॥१४॥ जब सभो०

क्रय विक्रयादिक में ठगी रह वञ्चना
परिवंचना व्यवहार सारे तथाविध।
हों स्तेन चोरी छिपे वे जो कर रहे
शिव तुम सभो के पति न मन है सर्वविध ॥१५॥

स्वामि गृह में वसे निसदिन अपहरण
करें सोचें वे 'निचेरु' उन्हें नमः।
कहीं भी घूमें फिरें अपहरण को
रहे परिचर रूप हर तुमको नमः ॥१६॥ जब सभो०

रहें वन में लूटने को दस्यु वे
रहो उनके रुद्र पालक हो नमः।
वज्र धारें निजी रक्षा हेतु भी
करें हिंसा अन्य की तुम को नमः ॥१७॥
रहो पालक स्वामियों का धन हरें
शस्त्र धारें रात्रि विचरें घात भी।
करें उनके रहो रक्षक हो नमः
सभी को अपनाव नमते हम सभी ॥१८॥ जब सभी०

× × ×

तात्पर्य—

जीव रूप शिव ईश रूप भी जब शिव भाते
क्या हैं वे क्या नहीं वृथा क्यों है घबराते।
औपाधिक जब नाम रूप सब वेद बताते
देव दानवी भाव मनुज के सभी लखाते ॥१॥
वीरों का सद्भाव क्षत्रियों में सब होता
क्या तब रुद्ररूप में वह नहि रहा सँजोता।
व्यापारी वा चोर तस्करों ठग की बातें
कोल भील अप शूद्र जाति की भी सब घातें ॥२॥
उन सबके भी रहे जभी स्वामी प्रतिपालक
पशुपति कहो उन्हें परमेश्वर सबका चालक।
नमो नमः तब रुद्ररूप को करते आए
सर्व रूप कह विश्व रूप तबही तो भाए ॥३॥
सत्यं शिवं सुन्दरं रह जग तभी अनोखा
कह शिव शक्तिमयं अथवा क्या रहता धोखा।
शान्तं शिवं तथा अद्वैतं सबको भाए
नाना रूपों में स्वरूप शिव एक लखाए ॥४॥
उग्ररूप भी श्रृंगारी शान्तरूप भी वे
घोर अघोर रूप शिव शंकर सभी रहे वे।
वीर भाव अत्यधिक रुद्र में वेद बखाने
वैदिक मंत्र पुनः पुन उनकी ही दुहराने ॥५॥

× × ×

बांध पग्गड़ फिरें चोरी कर रहे
पर्वतों में गये जिनके वस्त्र भी।
घर खेत भी जिस किसी विध मूसलें
पालते हो इन्हें तुमको नमन ही ॥१९॥

भय दिखाने धनुष वाणों को लिए
चढ़ा डोरी खींचते तुमको नमन।
करो कौतुक कभी उनको छोरते
कहुँ वींधते रहु रुद्र मेरा हो नमन ॥२०॥

जब सभी सर्वात्म शिव होवे० हर रहो हरि० हे देव नि० ॥

वेधते हो वाण से दो ताडना
शत्रुओं को कहीं बैठे पड़े भी।
जागते सोते कि लेटे दौड़ते
रुद्र ! तुमको हो अनेकों नमन हो ॥२१॥

हो सभासद सभापति होते कभी
अश्व होते अश्वपति भी हो नमः।
कभी निर्धन से लखाते रहो शिव !
जिस किसी विध रहो तुमको हो नमः ॥२२॥ जब सभी०

वेधते सब ओर सेना को तुम्ही
ताडते भी रुद्र तुमको नमन हो।
श्रेष्ठ दुर्गारूप में वा मातृगण
रहो तुम ही देव सब विध नमन हो ॥२३॥

रहो विषयी जनों के पालक तुम्ही
व्रात नाना जाति के भी पति रहो।
हीन रँह जो असंस्कृत सामान्य जन
रहो उनके तदपि रक्षक नमन हो ॥२४॥ जब सभी०

अनुचरों के गणों के अधिपति तुम्ही
नमन वारंवार बहुविध विकृत रह।
विश्वरूप हुए रहो गज सिंह भी
होंय नाना रूप में सब नमन यह ॥२५॥

ऐश्वर्यशाली भी तुम्ही अति क्षुद्र भी
होओ रथी अरथी कि रथ रथ अंग भी।
सेना तुम्ही हो कभी सेना पति तुम्हो
सब कुछ तुम्ही पुन पुन नमन होएँ सभी ॥२६॥ जब सभो०

रथशिक्षिता रथ चालकों में हो तुम्ही
होवे नमन रथकार शिल्पी को तथा।
रहते कुम्हार लुहार भी तुमको नमः
हो पक्षिघातो मत्स्यघातो शिव तथा ॥२७॥

धनुषकर्ता वाणकर्ता को नमूँ
गले पट्टा बँधे श्वानों के लिए।
रह बधिक से फिरो उनके स्वामि हो
नमन फिर-फिर करें तुमको भक्त ये ॥२८॥ जब सभो०

प्राणियों का होय उद्भव अतः भव
रुदन कारण दुःख रुद्र नसते हो।
नमन भव को रुद्र को भी नमें हम
शर्व को पशुपतिंहि को भी नमन हो ॥२९॥

नमूँ नीलग्रीवको शितिकण्ठ को
जटाजूटी तथा मुण्डित को नमः।
रँह सहस्रों नेत्र एवं भुजा धनु
धरें शिवको सदा करते हम नमः ॥३०॥ जब सभो०

कैलासवासी विष्णु को भी हो नमः
रँह वृष्टि कर्ता कहो सेचक वाणधर।
लघुरूप भी तुम रहो वामन वृद्ध भी
विद्या तथा वय से नमन मेरा प्रवर ॥३१॥

सबको बढ़ाते रहो आगे प्रथम भी
व्यापक गमन में कुशल भी होवे नमः।
हो शीघ्रगामी शीघ्र बहते नदी सम
रहते तरंगी ध्वनि विना होवे नमः ॥३२॥ जब सभो०

हो प्रवाह स्थित तुम्हें भी हो नमः
द्वीप में भी वसे हो तुमको नमन।
ज्येष्ठ को भी नमः कनिष्ठ को
पूर्वजों में अपरजों में हो नमन ॥३३॥

मध्यवर्ती बाल अति देवादि में
रहे तुम ही देव होय नमो नमः।
गाय में वृक्षादि शाखा रूप में
हो समाए शिव तुम्हें होवे नमः ॥३४॥ जब सभी०

मानवी गन्धर्वं में रह सोम्य हो।
नमः रक्षा बन्ध धारे तुम्हे हो॥
याम्य यम के लोक में भी तुम रहो।
क्षोम्य मुक्ति स्थान में नित नमन हो ॥३५॥

खेत में खलहान में तुम हो वसे
नमन तुमको वेद में वेदान्त में।
वनों में भी शिव लताओं में बसे
नमन ध्वनि में हो तुम्हें प्रति ध्वनि में ॥३६॥ जब सभी०

शीघ्रगति रथ सैन्य में भी हो नमन
शूर में शत्रु प्रहारों में रहो।
कवच धारे सारथी के स्थान में
रहु छिपे शिव तुम्हें फिर-फिर नमन हो ॥३७॥

विल्म होता कवच धारो शिव तुम्हें
भस्म पात्रं या धरो होवे नमः।
वेद में सुप्रसिद्ध वन्दी जनों में
सैन्य तव हे देव सब विध हो नमः ॥३८॥ जब सभी०

ध्वनि नगाड़े की निकलती दण्ड से
वहाँ भी तुम हो समाए शिव! नमः।
युद्ध में रह अडिग देते राय भी
सदा समुचित देव तुम्हें नमो नमः ॥३९॥

दूत हो सन्देश वाहक अग्नि भी
जनों को देवाभिमुख करते रहो।
तीक्ष्ण सुन्दर खड्ग धनुष त्रिशूल धर
वाण धारो रुद्र फिर-फिर नमन हो ॥४०॥ जब सभी०

लघुमार्ग में भी रहो वर्तो महापथ
नमन तुमको हुए शिव जलमूर्ति भी।
भू पड़े जल तथा पर्वत शिखर पर
रहे तन्मय होय तुमको नमन हो ॥४१॥

रहो कीचड़ या सरोवर में जभी
नदी पुखरा कूप वर्षे जलों में।
सिन्धु में रह मेघ में विद्युत सहित
नमें तुमको सभी विध जल रूप में ॥४२॥ जब सभी०

शरद की उस दीप्ति में चमको तथा
तपे जल में वायु से वर्षे जहाँ।
प्रलय कालिक में तुम्हीं शिव छा रहे
हो नमः सब विधा में शिव को यहाँ ॥४३॥

गोधनादिक वस्तुओं में भी बसे
भूमि जो निर्माण हेतुक रही है।
हो वहाँ भी वस्तु पालक सभी विध
शंभु शंकर नमन मम अगणित रहें ॥४४॥ जब सभी०

रुलाते दुख दूर करते रुद्र को
रँह उमा के सहित सोमनमो नमः।
नमः रवि के उदित होते ताम्र से
अरुण भासे लाल रुद्र नमो नमः ॥४५॥

प्राप्त करवा रहे सुख शंगाय को
नमः पशुपति नाथ उग्र स्वरूप को।
भीम को अभिमुखी रहते दूर भी
घात करते नमन होवे आपको ॥४६॥ जब सभी०

हननकर्ता रहे अतिशय घातकी
नमन करते रुद्र हे सब भांत ही।
हरे रँग के केश वाले कल्पतरु
रुद्र! तुमही हो नमः अत्यधिक ही ॥४७॥

प्रणव स्वरूपी तारने वाले तुम्ही
शम्भु को सुखमयी को होवे नमः।
तुम्ही शंकर मोक्ष सुखदायक सदा
हो पुनः पुन तुम्हें देव नमो नमः ॥४८॥ जब सभी०

शिव को नमः कल्याणतर तुमको नमः
वसे तीर्थों में नदी के कूल में।
रह रहे हो पार और अपार भी
देवेश! तुमको हम नमें सब देश में ॥४९॥

भक्ति साधन मंत्र जप में भी तुम्हो
मोक्ष साधन उत्तरण में नमें हम।
रहो आवगमन हेतुक हो नमः
जीव में फल भोगते तुम नमें हम ॥५०॥

जब सभी सर्वात्म शिव० हर रहो हरिहर० देवेश० ॥

कुश अंकुरादिक में रहो तुम फेन में
रहते प्रवाहित वालुके भी कणों में।
श्रद्धालु गंगातीर में स्नानादि को
वस रहे उनमें सदाशिव हम नमें ॥५१॥

शिव वसो ऊषर भूमि में तुमको नमः
उत्कृष्ट पथ में भी रहो होवे नमः।
तुम रहो पथरीले कुपथ में हो नमः
हो सुपथ वसने योग्य में भी शिव नमः ॥५२॥ जब सभी०

जटा बांधे रहो देव तुम्हें नमः
रहो भक्तों के समीपी हो नमः।
गोष्ठ घरमें वसे को हो नमः
पड़े खटिया पर भवन में हो नमः ॥५३॥

कण्टकों में कभी गहरे गर्त में
जल ह्रदों में पड़े कुहरे में नमः।
धूलिकण में अत्यधिक भी धूलि में
रहो शिव सर्वत्र तुमको हो नमः ॥५४॥ जब सभी०

अतृण भूमि कठोर में भी शिव रहो
तृणाच्छादित उलप में भी बस रहो।
शुष्क काष्ठ प्रदेश में स्थित को नमन
हरित गीले में बसे शिव को नमन ॥५५॥

भूमि में वस्ते हुए को हो नमः
जल तरंगों में रहे शिव को नमः।
हरे पत्तों में रहो तुमको नमः
शुष्क पत्तों में छिपे शिव को नमः ॥५६॥ जब सभी०

उठा ऊपर रहे आयुध हो नमः
हनन करते सामने शिव हो नमः।
खेदते रहते कहीं तुमको नमः
अत्यधिक पीडित करो हर हो नमः ॥५७॥

दे रहे धन जनों को होवे नमः
हृदय देवों के रहो तुमको नमः।
क्षीण दोष न होंय तँह भी वसो शिव
चुनो तुम गुण दोष भी होवे नमः ॥५८॥ जब सभी०

पाप सारे हत हुए ज्ञानाग्नि से
सौम्य घोर स्वरूप में शिव दृष्टि रख।
वसे ज्ञानी जनों में शिव तुम सदा
नमो वारंवार हो हिय भक्ति रख ॥५९॥

स्थूल रखके दृष्टि जो सर्वत्र ही
शिव स्वरूप निहारते कर प्राप्त भी।
कहे आमीवत्क देवों के हृदय
रमो शिव इनमें सदा हो नमन हो ॥६०॥

जब सभी शिवरूप होवे सदैव नमो नमः।
हर रहो हरिहर रहो देवेश ! नित्य नमो नमः ॥

सारांश

वेद मंत्रों के विविध रँह अर्थ भी
नमन करने को प्रगट शिव रूप ही।
लखे ज्ञानी गुणी अर्थ विचार के
पारमार्थिक पथों पर शिव एकही ॥६१॥

भाव रह सारांशता शिव की महाँ
विश्वरूप प्रभावमय दर्शी यहाँ।
जप किये इनका बहुत विध सुधी भी
मंत्र का कीन्हें पुरश्चरणादि भी ॥६२॥

फलीं सब विध कामनाएँ लोक में
हो अनुग्रह पूर्ण जो गुरु मूर्ति का।
ज्ञान आतम स्वरूप का परमातम का
कहो क्षण में दक्षिणात्मक मूर्ति का ॥६३॥

नमो रह देवाधिदेवों को सभी
सत्य ज्ञान अनन्त जो ब्रह्मात्म ही।
शान्त शिव एकात्म प्रत्यय सार भी
नमो कह-कह भारती कृत कृत्य हो ॥६४॥

•

प्रार्थनाएँ

बहु प्रार्थनाएँ भक्तजन करते रहे
फसे माया में तदपि मायी से कहे।
मायिक हुए शिव तुम दरिद्र लखा रहे
यति चक्र चूडामणि तथा तुम भा रहे ॥१॥

अभिमुख हमारे पशुजनों को भी न शिव
होवें न भयकारी हमारी शिथिल मति।
जो रँह हमारी ज्ञानमय ये वृत्तियाँ
कामादि से विचलित न कर परखें न गति ॥२॥

प्राचीनतम सामर्थ्यशाली रुद्र से
जटा धर कामादि वारक प्रभुँहिसे।
है प्रार्थना हो शुद्ध मति शिव शरण रह।
सब कार्य मानव पशु तथा हों पुष्ट वह ॥३॥

हों वह सभी के लिए हितकर ग्राम में
बसते हुए आतुर न हों शिव भक्त की।
यह कामना रहती अतः वह जँह रहे
दुर्भिक्ष व्याधि न कोइ बाधा शत्रु की ॥४॥

हे रुद्र तव कल्याणकारी शान्त तनु
दें दान जीवन भी हमारा हो सुखी।
है जो सभी भव रोग की परमौषधी
रह दुःख नाशक या उसे जन ना दुखी ॥५॥

कहें चरका चार्य मृत्युञ्जय जपे
भजे वृषभ ध्वज महादेवादि कह।
हों नष्ट सारे रोग नहि सन्देह कुछ
सत्य है यह सत्य है शिव सत्य रह ॥६॥

हे रुद्र आयुध आपके घातक न हों
जो पापियों के रँह प्रतारक दूर वे।
हमसे रहें, नहि क्रोध के हम विषय हों
तुम कृपा बरसाते रहो सुस्थिर हुए (ये) ॥७॥

जो आपको मानें अधिक रँह भक्त भी
उन पर सदा विस्तारते रँह कृपा वह।
गुणगान करते बालकों पर हों सुखी
वह, दीप्ति दुर्गति घातकी नित दूर रह ॥८॥

धर्मादि श्रद्धा भक्ति सद्गुण राशि की
वर्षा करो शिव श्रेष्ठतम हम सभी को।
होवें सु-मन कि प्रसन्न मन हम सब तथा
रह कहीं उन्नत वृक्ष पर निज शस्त्र को ॥९॥

आएँ पहन बस चर्म धनु शोभित रहे।
गुरुमूर्ति होकर प्रगट मम गोचर रहे ॥
है प्रार्थना यह ज्ञानमय वैराग्यमय।
विग्रह सदा ही रखे सन्मुख रँह अभय ॥१०॥

हरि विष्णु जब वाराह विग्रह में रमे
निग्रह किए तब आप लोहित हो गये।
होवे नमन भगवन् तुम्हें सब शस्त्र तव
भेददर्शी रहें उन पर पड़े वे ॥११॥

रँह जो तुम्हारे भुज असंख्यों में बड़े
वे अस्त्र ज्ञान क्रियामय निज हाथ में।
मुख मोड़ दें उन सभी के ईशान जो
पालक हमारे भी न बाधें वे हमें ॥१२॥

भूमि पर अगणित सहस्रों भ्रम रहे
हैं विरूप सुरूप मुण्डित जटिल भी।
रुद्रगण गुरुरूप से ले धनुष को
दूर रखें वह हजारों कोस ही ॥१३॥

आकासगंगा में कि तारागणों में,
भवगण विरचते जो अनेकों रूप में।
रक्षा करे वे आयुधों को दूर रख
वे सब हजारों योजनों में लख हमें ॥१४॥

शिति कण्ठ नीलग्रीव जो शिव रूप हैं
विषपान के पहले तथा पीछे कहें।
जो रँह नियामक स्वर्ग में इन्द्रादि के
पूर्वोक्त विधि से रुद्र सब रक्षक रहें ॥१५॥

भूलोक के नीचे तथा वे रुद्र सब
शिति कण्ठ नीलग्रीव शर्व स्वरूप में।
रँह सत्त्व रज तम भेद से त्रयलोक में
वे रुद्र भव वा शर्व शिव पालें हमें ॥१६॥

हर पाप के फल दुःख भुगताते यहाँ
वृक्षादि में या तृणों में रँह रुद्र ही।
उनमें रहा विष रोग नाशक होय यह
नहि रोग कारी प्रार्थना करते यही ॥१७॥

जो मार्गदर्शक वान प्रस्थी यति रहें
शिवरूप वे भी होंय रक्षक रुद्रगण।
पथ भ्रष्ट भी नहि करें ना फैलाँय भ्रम
हम प्रार्थना यह कर रहे सब भक्तगण ॥१८॥

जो पथों में पथ रक्षकों के भी रहे
रक्षक, कहो जो अन्नदाता भी रहें।
वे आयु नाशक होंय नहि वर्धक रहें
सब दान औषधि आदि का करते रहें ॥१९॥

जो रँह विचरते शस्त्र रखते हाथ में
हैं रुद्र की हो मूर्तियाँ तीर्थादि की।
रक्षा करें, बाँधें अखाड़े साधु के
रक्षण करें गुरु परमहंस स्वरूप की ॥२०॥

रँह अन्न पानादिकों के जो पात्र में
सूक्ष्माणु घातक कीट उनसे भी यहाँ।
हे रुद्र रक्षा करें सबकी प्रार्थना
बाधा न कुछ हो स्वस्थता होवे यहाँ ॥२१॥

रँह इन सबों से भिन्न जो हे रुद्र तब
विग्रह अनन्त लखाँय रक्षक हों सभी।
वे जहाँ कँहि संस्थित रहें दश दिशा में
है प्रार्थना रख धनुष कोसों दूर ही ॥२२॥

स्वर्गस्थ रुद्रों को नमन करते अभी
अति वृष्टि वर्षा जिन्हों को रह बाणमय।
अपनी अँगुलियाँ दशों क्रम से पूर्व में
दक्षिण तथा पश्चिम कि उत्तर में अभय ॥२३॥

ऊपर उठा प्रण में कहो कर जोड़ के
वे देव रक्षा करें हमको सुखी भी।
द्वेषी रहें या द्वेष जिनपै हम करें
डालें जमांते मुखों में चावें सभी ॥२४॥

जो रुद्र वात-प्रकृति-व्याधिक बाण लें
रँह अन्तरिक्ष प्रदेश में उनको नमन।
अपनो अँगुलियाँ दशों क्रम से पूर्व में
हम दक्षिणादिक दिशि उठा करते नमन ॥२५॥

कर जोड़ के है प्रार्थना रक्षा करें
हे देव रक्षा करें हमको सुखी भी।
द्वेषी रहैं या द्वेष जिन पै करें हम
हम उन्हें मुख में डालते चावें सभी ॥२६॥

जो रुद्र भूतल में विचरते दोषयुत
ले अन्नमय वह वाण उनको भी नमन।
अपनी अँगुलियाँ दशों क्रम से पूर्व में
हम दक्षिणादिक दिशि किये करते नमन ॥२७॥

कर जोड़ के है प्रार्थना रक्षा करें
हे देव! रक्षा करें हमको सुखी भी।
द्वेषी रहें या द्वेष जिनपै हम करें
हम उन्हें मुखु में डालते खाँएँ अभी ॥२८॥

प्रार्थनाएँ भक्त करते यह सभी
नमन भी करते असंख्यों वार ही।
रुद्रहे! शिव शम्भु! हे देवेश! कह
महादेव स्वरूप को शत नमन ही ॥२९॥

एक शिव

हे देव! तुम सब जगत के नियन्ता
व्यक्त क्या अव्यक्त जो रह जँह कहीं।
तत्व अन्तर बहिर रहता अणु महत्
महादेव सिवाय दूजा कुछ नहीं ॥१॥

अध्यात्म में अधि देव रह अधिभूत भी
सर्वात्म शिव छाया रहे वह एक हो।
है जो विविधता शक्ति की अनुभूति में
रह तत्त्वतः ब्रह्मात्म वहाँ अखण्ड ही ॥२॥

आधिभौतिक जगत् यह प्रत्यक्ष है
आधिदैविक से नियन्त्रित लख रहे।
अध्यात्म में इन दोय की जुड़ती कड़ी
स्वयं में अनुभूतियाँ सब कर रहे ॥३॥

अहं का सुस्थान रुद्र दबोचते
चित्त को चिति ने अचित्त लखा दिया।
नमन से मन को अमन शिव कर रहे
बुद्धि ने आभास को अपना लिया ॥४॥

शब्दोपाधिक एक सदा शिव रहा समाया
क्या नहि क्या वह भेद न तँह कुछ रहने पाया।
इदं अहं सचराचर सब विध वही लखाता
चेतन साक्षी मात्र एक अनुपम रह भाता ॥५॥

आनन्द ही आनन्द है सर्वत्र रे
फुर रहा आभास चेतन का यहाँ।
जागते सोते न कुछ अतिरिक्त यह
वह कि मैं तू भासता जो भो जहाँ ॥६॥

आभास चिति की चेतना फुरतो यहाँ
यह मुदित मन प्रियता प्रगट करता रहे।
अंतः करण में भासता चैतन्य नित
रह तभी चेतन जीव यह सर्वातिशय ॥७॥

तत्त्व केवल एक ही शिव भा गया
पा गया जो कुछ यहाँ पाना रहा।
क्यों वृथा मत भेद में जन डूबते
आत्म शिव है नित्य समरस वह कहा ॥८॥

मत भेद

धर्म ईश्वर देव जन-जन के पृथक
वेदवादी भी अनेकों विध कहें।
एक ऋषि मुनि नहीं बहुतेरे रहें
मन्त्रद्रष्टा भी विलग क्या ना रहें ॥१॥

मन्त्र ब्राह्मण उपनिषद् भी वेद हैं
कर्म काण्डक ज्ञान काण्डक भी रहें।
प्रायशः होते उपासन काण्ड भी
आधिकारिक भेद से वर्णित सभी ॥२॥

हो समन्वय सभी का उपनिषद् से
रहे जो अद्वैत बोधक तत्त्वतः।
द्वैतवादी तँहा भी करते कलह
पूर्व पक्ष उठा रहे वादी स्वतः ॥३॥

कर सका है कौन चुप उनको यहाँ
भरसका नहि मन सभी का तत्त्ववित्।
भले हो सर्वज्ञ पर अल्पज्ञ को
वशकिए हैं क्या सभी को ब्रह्मवित् ॥४॥

शास्त्रदर्शन आदि आगम भिन्न हैं
रहें मत इतिहास और पुराण के।
भिन्न नास्तिक वाद लखते लोक में
सुधी भी क्या मत समन्वित कर सके ॥५॥

राजनैतिक क्षेत्र आए दिन नये
खड़े करता वाद प्राय विरुद्ध ही।
भले हम व्यापार मिथ्या सब बता
पारमार्थिक पथ बताएँ सत्य ही ॥६॥

तदपि कोई निज दुराग्रह तजे क्या
लाख समझाओ न अपनी रीतियाँ।
नीतियाँ या जातियाँ वा कोटियाँ
त्यागते हैं कब मनुज उपलब्धियाँ ॥७॥

हुई जिनको जहां जैसी सत्य वे
कह रहे अपना रहे लड़ते रहे।
अतः तत्त्वज्ञान का पथ सभी से
रह निराला निजी हित से गह रहे ॥८॥

चाहते हैं सन्त सबका होय हित
देय ईश्वर सभी को सद् बुद्धि भी।
सोचते नर सत्त्व रज तम भेद से
गुण क्रिया कि स्वभाव क्या तजते सभी ॥९॥

कहें धर्माचार्य वेदाचार्य भी
कहो लोकाचार्य आर्य अनार्य वे।
विश्व के सब कहीं बैठे मंच पे
एक स्वर से जो लखाये सत्य वे ॥१०॥

नहीं संभव लोक के व्यवहार में
एक ही सिद्धान्त सबका रहा हो।
पारमार्थिक तत्त्व से अतिरिक्त कुछ
आज तक कँह एकता हुइ सिद्ध सो ॥११॥

बात ईश्वर धर्म की या देवकी
करें अपने पक्ष में नहि हानि कुछ।
सभी को हम मार्ग पर ले आँयगे
त्याग दें अभिमान संभव जो न कुछ ॥१२॥

दृष्टि सबकी एक सी हुइ ना कभी
होय जो फिर क्यों परस्पर कलह यह।
पिण्डगत ब्रह्माण्ड सब के भिन्न हैं
तभी तो मतभेद जग में बना रह ॥१३॥

विज्ञ भी करते समन्वय जँह कहीं
कहो समझौता, न मानव में सही।
हुआ होगा नहीं कर-कर थके सब
पीटते रँह निजी ढपलो व्यर्थ ही ॥१४॥

वहां आलोचक न कुछ भी कर सके
समालोचक सब जगत् के हुए भी।
श्वान की यह पुच्छ सा टेढ़ा रहा
जगत् सुधरा नहि सुपथ पर रहा भी ॥१५॥

एक मत अध्यात्मता के शिखर पर
चढ़े बिन निरखें न कोई द्वन्द्व जो।
मत मतान्तर ग्रन्थ पन्थ नसांय ना
भले! डुण्डी पीटते रँह विज्ञ सो ॥१६॥

एक दूजे को नहीं सन्मानता
राय देते रहें सारे मनुज ये।
नाम अपना काम साधक करें सब
दाम चाम निखारते रँह भले ये ॥१७॥

त्याग कर लोकेषणा वित्तेषणा
देहेषणा कँह वासना कोई न रख।
विरल जीवन्मुक्त ज्ञानी मोक्षपथ
कर प्रशस्त निजात्म की करते परख ॥१८॥

है सभी शिव रूप

जब सभी शिव अशिव फिर क्या रह गया
रह गया क्या शुभाशुभ वतलाँय भी।
सर्वं मंगलमयी वृत्ति उदित हुई
ब्रह्म विद्या उमा हेमवती रही ॥१॥

शिवा सो हो सती रह भव बल्लभा
कँह भवानी शक्ति आद्या शिवमयी।
नरों में नारायणी परमालसी
शक्ति शिवमय दृष्टि दृश्यमयी भयी ॥२॥

दृष्टि निज पर रखे सहज स्वरूप पर
दृश्य पर क्यों रीझता नर वृथा ये।
खीजता भी क्यों? नहीं जब अन्य कुछ
रही, शिवमय सृष्टि सारी लखी ये ॥३॥

सत्य ही शिव रहा सुन्दर कब अनृत
धरा पर फूला-फला कँहि झूठ भी।
सत्य को ही प्रतिष्ठा हुइ लोक में
रहा सर्वोपरि कहा वह ब्रह्म ही ॥४॥

सत्य का अस्तित्व कण-कण में लसा
आवरण छाया अँधेरी ला रही।
दृष्टि धुँधली हुई दृश्य निहारती
रहा साक्षी वस्तु सत् नहि पा रही ॥५॥

शिव सदा ही शिव अशिवता ना वहाँ
शिव रहा कल्याणमय जन के लिये।
शिव स्वयं निज आत्म को लख लेंय जो
तब अँधेरा अशिव कब रहता हिये ॥६॥

शिव भजे हिय में सजे दिन रैन जो
है सदा शिव रूप आत्मा जानिए।
वही ईश्वर वही रहता ब्रह्म भी
रमे शिव सर्वात्म हो पहचानिए ॥७॥

हुआ सार्थक वेद पढना पढाना
नसा सर्व अनात्म धन दुखदाइ सब।
हँसा मिथ्या रीति जग की देखता
शिव स्वरूप निहारता सर्वात्म जब ॥८॥

लग रहा प्रिय तभीतक संसार है
भासता सुखमय जभी जन रम रहे।
अरुचि होते दृष्टि से ओझल करे
हुआ अन्तर्मुखी जो तब क्या रहे ॥९॥

कृपा ईश्वर की निरतिशय हो गई
शेष फिर क्या कार्य रह जाता यहाँ।
सन्त सद्गुरु हो रहे अनुकूल सब
अन्य कोई रहे बाधक ना यहाँ ॥१०॥

सर्वं शिवमयं भाति

जब सभी शिव रूप भासे सोच क्या
मिले पशुपतिनाथ घर में सभी को।
सजगया आनन्द कानन सरस यह
कहो नन्दन वन मिला है मनुज को ॥१॥

इन्द्रियों का विभव पाया इन्द्र ने
दिब्य धुनि मकरन्द छायी शिवमयी।
छटा शैवी सत्य सुन्दर हुइ लसी
पट हृदय के खुले भासी चिन्मयी ॥२॥

बनी है वृजभूमि वृन्दावन अवनि
सधी वसुधा पूर्ण रसमय कहो या।
मन सखा के साथ लख गोपाल को
कृष्ण दुग्धामृत पिलाता भागया ॥३॥

राम ने आराम पाया है यहीं
हुए आत्मा राम हिय में आ बसे।
काम सारे त्याग कर वे जागतिक
रम रहे रस सिन्धु में सुन्दर लसे ॥४॥

विजय पाने राम रावण पर जभी
स्थापना रामेश्वरादिक की किये।
नाम जपते हनुमदीश्वर की जभी
कर प्रतिष्ठित भक्तिभाव दिखा दिये ॥५॥

दृष्टि जाती जहाँ तक भगवान् ही
देखते उसकी इकाई सर्वथा।
नाम रूप प्रकार या आकार कुछ भले !
भिन्न प्रकार सजती रह पृथा ॥६॥

घरों में जनपदों में या वनों में
घटों में या मठों में सर्वत्र ही।
नदीनद के तटों में पनघटों में
शक्ति शिव छाया रहे नित एक ही ॥७॥

सभी शिवमय भास्ने यह लग गया
दृश्य जग नहि जग रहा शिव भागया।
ग्राह्य त्याज्य न कुछ रहा शिव शिव भजे
ध्येय-ज्ञेय कि लक्ष्य पूरा हो गया ॥८॥

आनन्दमय शिव

उमड़ता आनन्दमय जब सिन्धु है
लहरं सत्यं शिवं वह सुन्दरम्।
शान्त शिव अद्वैत पूरा स्वयं में
रह कहीं कोई जगत् न असुन्दरम् ॥१॥

अहो! शैवी छटा घट-घट में लसी
हटे पट घूँघट कहो मति का जभी।
रहे मनकी नहीं खटपट कहीं जो
देय दर्शन प्रगट झटपट शिव तभी ॥२॥

अमर आत्मा सदाही आनन्दमय
ज्ञानमय भी भा रहो शिव रूप जब।
क्यों भला! फिर शोक चिन्ता में पड़े
ढोरहे संसार का क्यों भार तब ॥३॥

जो न उपजा वास्तविक कल्पित रहा
नाम रूप प्रवाह इसका चल पड़ा।
क्या कभो छाया पुरुष को जकड़ती
ठूंठ का वह भूत कब खाता खड़ा ॥४॥

जीव अपने आप मायाजाल में
पड़े सुखमय समझ मृगतृष्णा सरित।
जागते नर सदा स्वप्न निहारते
क्या जगत् का रहा कोई सच्चरित ॥५॥

हुए साक्षी सदा दृश्य निहारते
दिव्य चेतनरूप मायिक गुण रहित।
स्वस्वरूप स्थित हुए लखते न क्यों
सर्वदा हो सच्चिदात्म स्वरूप नित ॥६॥

साध कर देखो समाधि लगाय के
ध्यान चिन्तन तत्व का करते रहो।
सहज स्वाभाविक परिस्थिति क्या तुम्हें
कर रही विचलित स्वयं से भी अहो! ॥७॥

नहीं शंका कोइ करते स्वयं में
करो क्यों सन्देह शिव स्वरूप में।
लखो आँखें बन्द कर शिव को अभी
पाव परमानन्द होव निहाल भी ॥८॥

शिव संकल्पक मन

जागते जो पुरुष से हो दूर यह
दिव्य रह सोते पुरुष को प्राप्त मन।
दूरगामी ज्योतियों की ज्योति यह
होय शिव संकल्पमय मम शुद्ध मन ॥१॥

होंय जिससे यज्ञ ज्ञानादिक रहे
धीर कर्मण करें कर्म मनीषिगण।
पूर्व जिसके यजन में न समर्थ रँह
होय शिव संकल्पमय मम शुद्ध मन ॥२॥

बुद्धि धीरज वृति चित्त स्वरूप भी
अमर ज्योती मनुज में जो रहा मन।
विना जिसके कार्य कोई न सिद्ध हों
होय शिव संकल्पमय मम शुद्ध मन ॥३॥

जिस अमृतमय से सधे सब कार्य ही
भूत साधे भविष्यत त्रय काल मन।
यज्ञ याज्ञिक इसी से विस्तारते
होय शिव संकल्पमय मम शुद्ध मन ॥४॥

वेद त्रय जिसमें प्रतिष्ठित होरहे
अरारथ के चके में रँह ज्यों सघन।
प्राणियों का चित्त जिसमें जुड़ा रह
होय शिव संकल्पमय मम शुद्ध मन ॥५॥

चतुर सारथि अश्व की ज्यों राशको
खींच कर पकड़े लगाम तथैव मन।
लगा रहता चित्त जिसमें जनों का
होय शिव संकल्पमय मम सदा मन ॥६॥

शुद्ध मन हो शिव भजे सिद्धान्त है
होय वह शिव रूप दृढ़ संकल्प से।
कर रहे शिव से सदा ही प्रार्थना
तभी सुर नर ऋषि सभी शिव हो वसे ॥७॥

संकल्प में रह शक्ति वढ़-चढ़ कर सही
विधाता संकल्प से करता सृजन।
हुए जो संकल्प शिवमय सृष्टि सब
होय शिव शिव सदा शिव जो भजे मन ॥८॥

दृष्टि सृष्टि में शिव

दृष्टि सबकी टिक रही इस सृष्टि पर
जभी तक, यह तभी शिवमय सब लखें।
दृष्टि अथवा रहो जैसी सृष्टि भो
दृष्टिगत में जो सभी निष्ठा रखें ॥१॥

दृष्टि द्रष्टा की सदा स्वाधीन रह
विना द्रष्टा के कहीं दर्शन न हो।
दृष्टि भी दृश्यानुसारी भारहे
दृष्टि सृष्टो यही हम तुम सब कहो ॥२॥

दृष्टि ईश्वर विषयिनी या जीव को
कर रही है विषय अथवा जगत् को।
निज स्वरूप निहारती शिव रूप जब
कहो शिव से भिन्न रहता कहां को ॥३॥

छा गये जब दृष्टि में शिव ही सदा
भागये शिव निरतिशय प्रिय वह तभी।
पा गये सब भक्त ज्ञानी आत्म में
दृश्य जग में एक शिव लखते सभी ॥४॥

देखलें सुनलें समझलें तत्त्व यह
एक मेवा द्वितीयं शिव सध रहे।
दृष्टि इससे और क्या उत्तम रही
सृष्टि सारी शिव स्वरूप जभो कहे ॥५॥

लखा मैं तू सभी ये शिवरूप ही
दृष्टि में शिव आ गये फिर क्या रहा।
यहाँ कुछ पाना कि खोना भी नहीं
शिवमयी इस दृष्टि से सब सृष्टि हा ! ॥६॥

जपो शिव शिव रटो शिव शिव भजो या
सदा शिव शिव एकहो रह दृष्टि में।
नहों शिवमय दृष्टि से कुछ रह अधिक
शिवोऽहं सब सध गये निज दृष्टि में ॥७॥

दूसरा जब शिव सिवाय नहीं रहा
कौन किसको कहे अच्छा बुराया।
दृष्टि सृष्टी का निरूपण यह सुखद
हो गया तल्लीन शिव में कहो या ॥८॥

सृष्टि दृष्टि में शिव

दृष्टि में शिव आ गये जैसे रहे
हुए वर्णित समय पर तत्काल वह।
जिन्हें जैसा भाव आया हृदय में
वही तो ऋषि मुनि लखाये तत्त्व कह ॥१॥

हो गया ऐतिह्य उनका भीत भी
आँख देखा वह कहा जाने लगा।
शिव अनादि अनन्त वे लख पढ़े तब
ईश का वर्णन सृजन सा वह लगा ॥२॥

इस सृजन या सृष्टि पर हुइ दृष्टि जो
जीव ने तब शिव स्वरूप कहा सही।
लख रहे हैं आज भी कर-कर कथन
शिव प्रवाही हुआ भासा यह सभी ॥३॥

जीव जग की एक्यता भी हुई सो
नामरूपों में विभक्त लखाइ जो।
स्वयं का भी जब हुआ साक्षात् यह
शिवोऽहं सोऽहं हुआ अनुभूत सो ॥४॥

जीव ईश्वर नाम जो कि उपाधिमय
रहे उनका बाधकर कहने लगा।
शुद्ध चेतन ब्रह्म आत्मा नित्य लख
एक्यता का भाव जुड़ने लगा ॥५॥

हुई दृश्य स्वरूप सारी सृष्टि ये
दृष्टि इस पर टिकी लखते आज भी।
वाद सब निश्चित जहाँ तँह हो गये
वास्तविक शिव एक केवल रह सभी ॥६॥

सृजन केवल नाम रूपों का लखा
स्वर्ण के भूषण गढ़े से भासते।
मृत्तिका के घट सुराही पात्र सब
उपादान निमित्त क्या न उपासते ॥७॥

यही रह सत्यं शिवं या सुन्दरम्
शिवं शान्तं याकि अद्वैतं तथा।
समझ में सबके सरलता से यही
भासता क्या नहि यहाँ शिव सर्वथा ॥८॥

सर्वत्र शिव

दृष्टि में जब शिव समाए रहे नित
सृष्टि में तब क्यों न वे नियरांयगे।
ग्रहण करने दृश्य का कब दृष्टि को
समय लगता, जब कि शिव नँहि पाँयगे ॥१॥

हुए द्रष्टा शिव जभी सब कुछ ग्रहण
करें तत्क्षण रूप बहुविध धारते।
भूविवर में पड़ी आहुति शिव तभी
धार तनु तत्काल तँह वह पावते ॥२॥

दृष्टि ओझल शिव कभी होते नहीं
नहीं द्रष्टा की विगड़ती दृष्टि भी।
सृष्टि शिवमय अतः ठोस लखा रही
कहे सद्घन यहाँ चिद्घन शिव तभी ॥३॥

क्यो त्रिपुटि में शिव नहीं संस्थित हुए
क्या उपाधि विहीन शिव रह सर्वदा।
क्या सगुण ईश्वर रहा कि उपाधि विन
कहो निर्गुण विद्यमान न है तदा ॥४॥

कब सदा शिव विद्यमान रहे नहीं
विना शिव के दृष्टि को कब पा रहा।
दृश्य सृष्टि सिवाय शिव के सधी कब
अधिष्ठान न होय शिव तब क्या रहा ॥५॥

गूढ़ नहि शिव की पहेली रह कभी
भाय शिव अपरोक्ष नित ही बुधों को।
दृष्टि पाकर सही सृष्टि निहारते
रहा सब शिव शक्तिमय जग सुधी को ॥६॥

दृष्टि अनुपम पा गया ज्ञानी सुबुध
सृष्टि अनुपम भी समझ में आ गई।
शिव तथा निरुपम सुहाय रहा तभी
बात दूजी कहाँ से कुछ भावगी ॥७॥

शिव शिवोऽहं कह रहे सोऽहं सभी
शिव सिवाय न दृष्टि में नहि सृष्टि में।
शिव सदा शिव पूर्ण शिव रह सत्य शिव
लोक में रँह वेद में शिव सभी में ॥८॥

शिव की द्वादश ज्योति

ज्योतियों की ज्योति सर्व प्रकाशिका
हृदय में आभास जिसका हो रहा।
ध्यान धर के देखते निज नयन से
सदा ही प्रतिभासमय यह सज रहा ॥१॥

शुभ मंगलमयी वह शिव मूर्ति जो
लखो विधि हरि ने प्रथम इस धरा पर।
थे बड़प्पन के विवादी दोउ जब
प्रगट ज्योतिर्मय रहा शिव परात्पर ॥२॥

प्रगट थी ओङ्कार की महिमा प्रथम
नाद विन्दु समेत पञ्चावयव भी।
पञ्चमुख परमेश ने प्रगटा दिये
ध्वनित नमः शिवाय होता वहाँ ही ॥३॥

लगे जपने जो वहाँ विधि हर जभी
लखे अभिमुख भवानी शंकर तहाँ।
कर अनुग्रह पूर्ण दोनों कर बता
आत्म शिब उन दोय की दर्शी वहाँ ॥४॥

सौराष्ट्र में शिव सोमनाथ प्रसिद्ध हैं
श्री शैल में शिव मल्लिकार्जुन नाम से।
उज्जैन में रँह महाकाल महान् शिव
नर्मदा तट ॐ कार ममलेश्वर लसे ॥५॥

हैं वैद्यनाथ महेश परली आदि में
रँह भीम शंकर डाकिनी के निकट ही।
जँह सेतु बाँधे सिन्धु तट रामेश रँह
कँहि दारुका वन में कहें नागेश भी ॥६॥

हैं विश्वनाथ प्रसिद्ध वाराणसी में
वह त्र्यम्ब केश्वर लखे गोदावरी तट।
वसते हिमालय में तथा केदार जी
शिव क्षेत्र घुसृणेश्वर इलोरा सन्निकट ॥७॥

रह ज्योतियों की ज्योति द्वादश स्थान में
हुई थी प्रगट जो कहें ज्योतिर्लिंग भी।
शिव सन्निधी में पाठ सन्ध्या समय जो
करते मनुज शिवलोक प्राप्त सदैव ही ॥८॥

पञ्च तत्त्वादि लिंगों में शिव

शिव के सहस्त्रों नाम तव अवतार क्या
होंगे न शतशः लक्षशः या कोट भी।
है रुद्र की महिमा पुराणों में बड़ी
न हि शेष शारद पूर्णतः कहसकें ही ॥१॥

नर्मदेश्वर नर्मदा के नीर में
वाण लिंग असंख्य अगणित ही रहे।
स्थापना देवाधिदेवों ने करी
कहीं ऋषि मुनि बड़े तप करते रहें ॥२॥

प्रथित है माहात्म्य रेवाखण्ड में
तीर्थ संख्या नाम संख्या अमित जँह।
कौन वर्णन पूर्ण इनका कर सका
नर्मदे हर! नर्मदे हर! रटें तँह ॥३॥

भूलिंग आपोलिंग तेजोलिंग भी
है वायुलिंग तथैव शिव आकाशमय।
रह सूर्य चन्द्र प्रसिद्ध शिव यजमान भी
ये अष्ट मूर्तिक कहे जाते निरामय ॥४॥

लीन रह संसार गति जिनमें सदा
निर्विशेष स्वरूप द्योतक लिंग रह।
चिदाकाश महान् जो अव्यक्त शिव
व्यक्त परिचय दे रहा शिव चिह्न यह ॥५॥

अनादि अनन्त शिव

रँह अगोचर शिव न जो प्रत्यक्ष हों
हुए कब से कह सकें न अनादि तब।
पड़े रँह संस्कार अन्तःकरण में
जगाते शिवरूप को वे कहें तव ॥१॥

हो सदा अस्तित्व की अनुभूति भी
भूत कालिक वे रहे संस्कार सब।
मान उनसे होय ज्ञानस्वरूप का
प्रिय लगे शिव बसे रँह वे क्या न तब ॥२॥

वस्तु सत्य स्वरूप सुन्दर भी लगे
शिव सिवाय न अन्य कोई हैं रहा।
परम सुन्दर सदा हितकर कौन है
शिव तभी कल्याण मय रहते कहा ॥३॥

जागते संस्कार में शिव छा रहे
त्यागते वा ग्रहण करते भी वही।
सभी विध अनुभूतियों में शिव वसे
नित्य चेतन हुए शयन करें तभी ॥४॥

गुहा अन्तःकरण मय शोभित रही
गुहा वासी शिव वहाँ संस्कृत रहें।
जगाते संस्कार वे निज रूप के
करें ज्ञानी उन्ही का दर्शन कहें ॥५॥

एकमात्र शिव

हो रहा अनुभूत प्रतिक्षण शिव यहाँ
कहे शान्तं शिवं अनुभूतं जिसे।
कोइ कहते शिवं सत्यं सुन्दरं
विविध-विध गाते विबुध रहते इसे ॥१॥

आत्म ही जब शिव रहा सर्वत्र यह
आतम को फिर भजे कौन अनात्म वह।
आत्म से अतिरिक्त मैं तू कुछ न वह
सिद्ध जब होता न तब क्या रहे वह ॥२॥

भले! वर्णन करें अपना ही सदा
किए गौरव प्रगट शिब का नाम ले।
पिष्ट पेषण या कि सारा ही रहा
शान्त शिव आत्मा लगाया जो गले ॥३॥

छा रहे प्रतिश्वास में शिव सत्य वह
क्या न सुन्दर शान्त शिव अद्वैत यह।
भाँय जो सर्वोतमोत्तम सुधा से
होंय वे अनुभूत प्रतिक्षण कहो वह ॥४॥

ग्रन्थ सारे पन्थ या मतवाद भी
सिद्ध नहि शिव के सिवाय किये यहाँ।
भजन का केवल प्रकार रहे विलग
भासता विद्वान् का आत्मा वहाँ ॥५॥

कहो अथवा समय यापन कर रहे
बोलते लिखते बताते तत्त्व शिव।
कहें वह ब्रह्मात्म अन्तर बाह्य भी
होरहा सब भाँत अनुभवगम्य शिव ॥६॥

लोकसंग्रह लोक में या कर रहे
ख्यातनामा हुए जग विख्यात या।
कहो कुछ भी नहीं शिव अतिरिक्त वे
सिद्ध कर पाए न मत कोई नया ॥७॥

वृत्ति उत्तम अधम क्या इसको कहें
कहें क्या अपरोक्ष या कि परोक्ष भी।
प्रमा शाब्दी या कि रह योगज प्रमा
भजें शिव-शिव कहो सन्तत सब सुधो ॥८॥

परा चेतन एक नित चिच्छक्ति है
अन्य सब गुण दोष मय संसार है।
शुद्ध समरस शान्त शिव निर्दोष तँह
वसा पुरियाँ वसा अपरम्पार है ॥९॥

देह - देही - भाव रखते जीव शिव
शक्ति मायोपहित होता ईश शिव।
देश - कालोपाधि से पर चरम शिव
रँह अनादि अनन्त अद्वय सदाशिव ॥१०॥

आत्म शिव ब्रह्मात्म शिव सर्वात्म शिव
सर्व स्वामी विश्वनाथ अनाथ शिव।
साम्ब शिव रँह निरालम्ब निरीह शिव
चिदानन्द स्वरूप पावन परम शिव ॥११॥

शिव-शक्तिमयं जगत्

शिव शक्ति का विभव

तब न क्या स्तुति हो जगदम्बिके
सकल शब्दमयी तव मूर्ति जो।
निखिल आकृति में तव सन्निधी
रह मनोगत या मम बाहरी ॥१॥

यह विचार अमंगल - हारिणो
जगत् में विन यत्न हुआ यहीं।
स्तुति जपार्चन ध्यान विना कहो
मम न काल कला कुछ भी कहीं ॥२॥

प्रतिश्वास जप होता सहज हे शारदे
अन्तर बहिर गतिशीलता में तू लसो।
पूजा करों से तब सभी विध हो रही
माला सरकती लेखनी में तूँ बसो ॥३॥

वाणी विराम न जागते क्षण में गहे
तू ही परा तू मध्यमा में भी रही।
उच्चारती संस्तवन करती तू न क्या
आसन ग्रहण तू जीभ पर जो कर रही ॥४॥

चिन्तन न अब कुछ अन्य का कँहि हो रहा
चिच्छक्ति की जो चेतना चिन्तन गहे।
था उचित ही तब चित्त चिन्तन में लगा
जोवन जगत में हुआ चिन्मय यह सही ॥५॥

ध्वनि व्यक्त हो अव्यक्त हो तेरे बिना
प्रगटी कहाँ कोई बताएँ सुधो ये।
तू वाच्य में तू लक्ष्य में तू व्यंग्य में
रहती समाई शब्द तनु हुइ कहें ये ॥६॥

हे शव्द - शक्ति - प्रकाशिके ! तू ही स्वयं
यह अर्थमय संसार तुझसे रह प्रगट।
तू सहज आत्म ज्योति ज्ञानमयी शुभा
में तू कि यह वह सभी कुछ तेरे निकट ॥७॥

अथवा कहें मैं तू न कुछ सब तुही है
वैभव सभी प्रत्यक्ष और परोक्ष जो।
तेरा सदा अपरोक्ष रूप सुहारहा
जगदम्बिके ! रह जगन्मय शिव भक्ति सो ॥८॥

व्यापक शक्ति का प्रभाव

जगद्व्यापिनि हो जभी जगदम्बिके
तब न क्या सत्ता तुम्हारी सर्वगत।
सर्वमय हम रूप नित्य निहार के
क्या न होंय कृतार्थं लख के आत्मगत ॥१॥

चेतना चिच्छक्ति की संस्फुरित रह
सभी में अनुगत हुई भो सर्वदा।
दृश्य दर्पण में पड़े जब दृष्टि तब
निरखते छवि हुए द्रष्टा हम सदा ॥२॥

गगन मैं तू पवन में नित ज्योति में
भासती जल में सुथल में सभी में।
कहाँ ओझल हुई महिमा अम्बिके
नाम रूपों में ध्वनित तूं सभी के ॥३॥

करे कलरव पंछियों में तुही तो
गीति लहरो में सदा लहराय तूं।
खिलखिलाती बालके चापल्य में
मोहती आनन्द - दायिनि मातु तूं ॥४॥

सकल मन की वृत्ति में फुर रही तूं
प्राण में गति शीलता को लिए तूं।
बुद्धि के नित बोध में रह शुद्ध तूं
शक्ति तू परिपुष्टि तूं सन्तुष्टि तूं ॥५॥

भक्ति तूं अनुरक्ति और विरक्ति तूं
मुक्ति तूं रह भुक्ति तूं संदीप्ति तूं।
शान्ति तूं विद्या अविद्या क्या न तूं
क्रान्ति-भ्रान्ति - निवारिणी सम्पति तूं ॥६॥

वर्ण स्वर में लसी तूं अपरा परा
मध्यमादिक वैखरी में बोलती।
ध्यानियों में ज्ञानियों में विभव तूं
ले सुधा की मधुरिमा तूं घोलती ॥७॥

क्या न तेरी हो रही पूजा सदा
प्रेयसी तुझसी न कोई श्रेयसी।
जगत् ने जो लखी आस्तिक आत्मश्री
चन्द्रिका चितचन्द्र की हिय में लसी ॥८॥

दिव्य शक्ति

दिव्य शक्ति अनेक रूपों में लसी
दिव्य देवी रूप में रह चण्डिका।
दिव्य सौम्याकृति तथैव विभासती
अहो शोभित सर्वदा जगदम्बिका ॥१॥

शक्ति रूपा सर्वरूपों में रही
भुक्तिरूपा मुक्तिरूपा भी तुही।
शान्तिरूपा दान्तिरूपा रही तब
नमस्तस्यै नमस्तस्यै करें सब ॥२॥

रही विद्यारूप में तू ही सदा
तथा श्रद्धारूप में भी रही जब।
कभी लज्जा कभी निद्रा रूप से
नमस्तस्यै नमस्तस्यै करें सब ॥३॥

रहे देवी जगज्जननी रूप से
धारिणी तू पालनी संहारणी।
रही पाप निवारिणी तू मातु हे
नमस्तस्यै नमस्तस्यै कर रहे ॥४॥

तू विधात्री तू उमा तू ही रमा
कभी गायत्री कि सावित्री रहे।
ज्ञानगंगा हुई गीता - भारती
नमस्तस्यै नमस्तस्यै कर रहे ॥५॥

शिव शक्ति

शक्ति शिव की पृथक्-सो पर ना पृथक्
शक्ति किसकी रहो जिसकी कहें वह।
शक्ति शिव से सजी या शिव शक्ति से
स्वयं शिव हैं करें निर्णय या कि वह ॥१॥

स्पष्ट है नहि प्रगट शक्ति पृथक् कभी
शक्तिमान् परन्तु प्रगटित लख पड़े।
शक्ति आश्रित रही शिव की तथ्य यह
रहा शिवाश्रित सभी भाव अभाव वह ॥२॥

शक्ति जननी वहाँ शिव रहते जनक
कार्यकारण भिन्न और अभिन्न कब।
हो न इससे भेद तथा अभेद ही
शक्ति शिव में नहि विरोधी भाव जब ॥३॥

स्वयं शिव सर्वात्मभाव प्रगट किये
ईश क्या परमेश और महेश भी।
है स्वयंभू प्रगट ज्योर्तिलिंग भी
शक्तिमय अभिव्यक्ति शिव रँह एक ही ॥४॥

नही दो की कल्पना निज में रहो
कर रहे अनुभव यहाँ पण्डित सभी।
है अखण्डित शिव - शिवा की मूर्ति जो
अर्धनारी नटेश्वर भी रहें सो ॥५॥

केश रँह मन्दार माला से सजे
मुण्डमाला से अलंकृत जो रहे।
दिव्य अम्बर धारती उस शिवा को
हम दिगम्बर रूप शिव को नम रहे ॥६॥

रहो देही देहधर शिव शक्ति हे
तुम्हें बारम्बार देव नमो नमः।
सगुण निर्गुण भेद भासें रहें या
नित्य एक स्वरूप होय नमो नमः ॥७॥

मन्दिर विरचते आ रहे नित प्रति नये
नाम रूपों में असंख्यों जो खड़े।
दिव्य देवी देव होकर हैं लसे
शक्ति शिवमय जगत में रहते अड़े ॥८॥

व्यापक तत्त्व

बसे हैं भगवान् कणकण में जभी
भगवतो क्या सृष्टि ना होती तभी।
शक्ति शिवमय जगत् श्रुतियाँ कहें भी
जोव द्रष्टा को हुई अनुभूत हो ॥१॥

तब शुभाशुभ क्या रहा नहि द्वन्द्व कुछ
प्रकृति के गुण धर्म प्रकृति-स्थित रहे।
परा अपरा जब सभी रह ईश को
व्याप्त उससे सर्वथा सब जग कहे ॥२॥

कौन वह अतिरिक्त कह शिर उठाता
रहा जब सच्चित् सिवाय न दूसरा।
द्वैत कब अद्वैत से प्रगटा प्रथम
एक तत्त्व अखण्ड सब जग में भरा ॥३॥

कहा माता पिता जग का एक है
पार्वती परमेश जननी जनक जो।
तुम्ही माता पिता कहते बाल भी
तुम्ही बन्धु सखादि सब कुछ तुम्हीं हो ॥४॥

स्वयं शिव आत्मा भवानी बुद्धि भी
स्वयं आत्मा पुत्र होके प्रगट हो।
जीव सब अवतार उसके रहे, तब
एक ही अतएव व्यापक तत्त्व सो ॥५॥

ॐ नमः शिवाय

अनुस्वारी बिन्दुयुत ओङ्कार का
ध्या रहे हैं नित्य योगीगण जिसे।
योग देता मोक्ष भी जो जनों को
नमन हो ओङ्कारमय शिव जो लसे ॥१॥

नम्र रहे हैं देव - ऋषि - देवाङ्गना
नमें नर-नारी सभी जन देवेश को।
नमस्कार प्रणाम दिव्य नकारमय
मन्त्र अक्षर आदि जो रह उसी को ॥२॥

महादेव महान् आत्मा भी रहें
महाध्यान - परायणी से जो गहें।
महापाप हरें नमूँ उस देव को
रह मकार स्वरूप उसे प्रणाम हैं ॥३॥

शान्त शिव जो विश्वनाथ प्रसिद्ध हैं
लोक के कल्याण में तत्पर रहें।
एक शिव पद नित्य जिनका सध रहा
उस शि-कार स्वरूप को बहु नमन है ॥४॥

रहे वाहन वृषभ जिसका कण्ठगत-
रहे भूषण वासुकी जो नाग है।
रहे वामांगी शिवा जो शक्ति है
उस व कार स्वरूप को नित नमन है ॥५॥

यत्र-यत्र जहाँ कहीं स्थित देव यह
सर्व व्यापक रह महेश्वर रूप में।
जो सभी लोकाधिपति के गुरु रहें
उस यकार स्वरूप को फिर-फिर नमें ॥६॥

हृदयेश शिव

बस रहे भगवान् जब हैं हृदय में
फिर यहाँ आघात कैसे होय है।
क्या हृदय पाषाण बन जाता जभी
सह रहे अथवा सभी भगवान् वे ॥१॥

हृदय शायी हैं सदा हृदयेश शिव
कौन उनका घर अशिव करने चला।
शिव अशिव घर में न बाहर हो सके
सुन्दरं सत्यं शिवं भासा भला ॥२॥

शयन करते जागते शिव सर्वदा
जड़ समाधि न साधते चिन्मय रहे।
हुई मंगलमय मही अन्तर बहिर
कब अशिव शिवभक्त कँहि कुछ भी गहे ॥३॥

सब सदा शिव हो गया चिन्मय वपू
कौन कब किसको हने अवनाशि शिव।
द्वन्द्वमय संसार का संहार जो
कर रहा वह नित्य घट-घट बसा शिव ॥४॥

क्या यहाँ बनना बिगड़ना तब रहा
कहो रोना या कि धोना वृथा ही।
व्यर्थ मन होता व्यथित शिव को भुला
अशिव तन-मन-धन निहारे जो सही ॥५॥

कहो लीला सभी शिव की हो रही
दृश्य बहुविध हुँइ लखातीं शक्तियाँ।
जो कि मायामयी मायी ने कहीं
कल्पनामय हों प्रगट अभिव्यक्तियाँ ॥६॥

दृश्य द्रष्टा को कभी नहि ग्रस सका
नहीं छाया पकड़ पाई बिम्ब - छवि।
वृथा ही अन्धे उलूकों ने यहाँ
कह दिया संसार में प्रगटा न रवि ॥७॥

दृष्टि पड़ते दृश्य शिवमय भा गए
श्रवणपुर में श्राव्यमय भासें सभी।
अन्य नहि शिव के सिवाय लखा सुना
शिवं शान्तं अद्वयं श्रुति कह जमी ॥८॥

अमृतसर

मिला कुछ, कुछ और भी पा जायँगे
कामना की दौड़ अब यह ना रही।
कमर टूटी कल्पनाओं की कहें
लहलहाता जो निहारा अमृतसर ॥१॥

अमरता विभुता लता हुइ कल्पतरु
विशद छाया घनी छायो विश्व में।
निरखने जो लग गये हम धरा पै
हस्तगत था सुरों को संसार में ॥२॥

नर निहारें सभी नारायण यही
रह रहे संगी बने जो नित्य हो।
जुगल जोड़ी सदा से इनकी रहो
प्रीति जोड़ो जिन्होंने वह लखें ही ॥३॥

अहो ! शिव शिवरात्रि में भी जग रहे
जगमगाते जीव हो हो रात दिन।
बन गई नवरात्रि या नव नव यहाँ
भा रहे अन्तर बहिर शिव भक्त को ॥४॥

शक्ति संयुत शक्तिमान लखें सुदिन
सत्य है शिव शिव सदा सुन्दर तथा।
शिव भजे उनको भजूं शिव भक्त भी
शिव शिवा वे दो न लखते शम्भु को ॥५॥

शक्ति शक्तिमान्

गा रहे हैं गीत अपने इष्ट के
ध्या रहे हैं रूप उसका जन सभी।
नाम लेते रहें जिनको जो रुचा
मानकर शिव शक्तिशाली ये जभी ॥१॥

चाहते हैं मुझे सब विध शक्ति वह
मिले मुझको ईश का वैभव सभी।
रिक्त अपने को समझ ये मन्दमति
होन चाहे शक्तिशाली ये तभी ॥२॥

जब कि सब में रह रही संस्थिता सदा
बुद्धि विद्या आदि रूपों में बसो।
शक्तिहीन कदापि नहि यह जीव शिव
क्या न उसके बिना सत्ता हो नसी ॥३॥

पाठ चण्डी का करें आस्तिक लखें
विविध रूपों में विराजी जंह तहाँ।
कह रहे या देवो सर्व भूतेषु
संस्थिता रह शक्तिरूप-तया यहाँ ।।४।।

तदपि करते प्रार्थना मुझको मिले
शक्ति बिद्या बुद्धि लज्जा आदि भी।
चिद्विषयिनी चेतना चाहें मनुज
युक्त रहकर भी वियुक्त लखा तभी ।।५।।

शक्ति बिन शिव शव यहां पर लख पड़ा
हुआ रह सर्वात्म भी निज शक्ति से।
करें अनुभव भक्तजन सब सन्त भी
ज्ञान गरिमा पाँय भजते भक्ति से ।।६।।

सेवते सब विभव निज में बसा लख
हेरते हरिहर छटा घट-घट बसी।
लेखते परतत्त्व व्यापक नित्य सत्
जो अविद्या रात्रि जीवों की नसी ।।७।।

नित्य ही नवरात्र या शिवरात्रि है
हो रही ब्रह्माण्ड में निज पिण्ड में।
झिल-मिलाते दीप दीपावली के
प्रगट बासन्ती छटा नवरात्रि में ।।८।।

काया काशी मिली सबको

पुरी कशी मिली काया मनुज को
धाम यह शिव को अनुठा भा रहा।
सभी सांचे या कि ढांचे ना जचे
गुणाधानी इसे माने आ रहे ।।१।।

अहो! काशीपुरी में सब रह रहे
तदपि रँह भयभीत सारे अबुध ये।
विरल बुध कहते शिवोऽहं कोइ जो
हैं स्वरूप-स्थित सदा मन मनुज ये ।।२।।

विश्व शिवमय भासता नित विज्ञ को
शिवा-शिव दूजा कहाँ प्रगटा यहाँ।
शक्ति अपनी प्रगट कर शिव रह रहे
व्याप्य व्यापक भेद भी उनमें कहाँ ॥३॥

काशी विश्वनाथ

विश्वभर में एक चेतन लख पड़ा
नाथ और अनाथ सेवक स्वामिता।
वही पूजक पूज्य माता पिता भी
राख पत्नी पुत्र की केंहि मान्यता ॥१॥

एक ने पूछा कि तुम उस नाथ के-
गये मन्दिर नित्य जल भी ढारते।
करो पूजा पत्र पुष्पों से तथा
या कि केवल बात करके टालते ॥२॥

एक बोला पूजने की बात तुम
करो प्रायः समझकर कर्तव्य भी।
मुझे तो दिन रात सब कुछ देखना
पड़ता उन्हीं का यह पसारा जो सभी ॥३॥

दिया है अधिकार काशीपुरी का
रहो इसमें करो सब कुछ यहीं तुम।
राजधानी मान मेरी रम रहो
भिन्न आत्मा से न समझो मुझे तुम ॥४॥

मिला है आदेश शिव का मुझे तो
समझ उनको निजात्मा पूजूं सदा।
मान आज्ञा नित्य प्रति इनमें रमा
रह मुदित कहकर शिवोऽहं सर्वदा ॥५॥

विश्वनाथ की पुरी में

अनन्त अन्तरिक्ष में उड़े अनन्त काय ले
विहंगमादि रूप से अनन्त चिद्वपुः लखें।
अनन्त है अपार है असीम वा अखण्ड भी
स्वरूप प्रत्यगात्म का निहारते सभी यहाँ ॥१॥

रहा विशाल खण्डमय न खण्ड किन्तु हो सका
नभस्थलादि लोक में अलोकता लिए लखें।
अहो अनाथ नाथ भो न भूतनाथ ;क्या हुए
सनाथ साथ दे रहे बटाँय हाथ जो सदा ॥२॥

करें कृतार्थ जीव को शिव स्वरूप दे वही
महेश वे सुरेश वे गणेश वे दिनेश भी।
प्रसिद्ध हैं सुसिद्ध हैं असिद्ध सिद्ध भी करें
करें नमो नमः अतः समस्त भक्तवृन्द ही ॥३॥

अनन्त की अपार देन पाइ है अनन्त ने
अनन्त का तभी न अन्त अन्तकादि ने किया।
अनन्त की कृपा यहाँ सुकान्त शान्त दान्त ही
बना रही अपात्र को सुपात्र पावनी सदा ॥४॥

अपार पार पा गये अपार चिन्मयी गहे
अलक्ष्य लक्ष्य वेद्य भी किये करे अभी यहाँ।
बसे पुरी प्रकाश की कि काशिकादि नाम की
सुसिद्ध आज हो गई निहार विश्वनाथ को ॥५॥

काशीपुरी

रह स्वयं अविमुक्त सबको मुक्त हो
कर रही काशीपुरी जनमात्र को।
कँह अमंगलशील शिव अविचार से
परम मंगलमय सदा शिव सर्व को ॥१॥

दिव्य काशी में सदा हम रह रहे
नित्य शिव की शरण रह अनुभव करें।
विलग शिव से हम न हमसे शिव विलग
अशिवता कहते शिवोऽहं परिहरें ॥२॥

ज्ञानमय गंगा अहर्निश बह रही
होय मज्जन पान निर्मल काय भी।
ध्यान चिन्तन अन्य सब कुछ ना रहा
शुद्धमति जगदम्बिका हर्षा रही ॥३॥

सत्यं शिवं सुन्दरम्

सत्य की ही जय

सत्यमेव जयते कहते हैं जनगण सारे
पाते सत्य यथार्थ या कि रंह सत्य किनारे।
सत्य-तत्थ्य-हितकारि वचन क्या सदा बोलते
नीति रीति व्यवहार सभी में सत्य तोलते ॥१॥

शिक्षा दीक्षा घर बाहर क्या सत्य मयी है
लेन देन व्यावहार मार्ग क्या सभी सही है।
मिथ्याचार विचार न जो जीवन में भाया
यदि हाँ तब तो सत्य सर्वगत जग में छाया ॥२॥

सच्चरित्र सत्पुरुष सदाचारी सत् जानें
सती नारियाँ पति परायणा सत् पहचानें।
सत्कर्मी सज्जन सद्धर्मी सत्य गहे हैं
सन्मार्गी सद्गुणी सद्व्रती सन्त रहे हैं ॥३॥

परम सत्य परमार्थ पथिक परमेश्वर पाया
ब्रह्म सच्चिदानन्द आत्ममग्न जो नियराया।
पूर्ण हुआ पुरुषार्थ सत्य की विजय सुहानी
नहीं पराजय कभी सफल तंह श्रुति की वाणी ॥४॥

सत्यमेव जयते सार्थक है नही झूठ यह
सत्यमेव जयते पादत्रय त्रयकालिक रह।
सत्यमेव जयते रहता नित विजय शील यह
अनृत झूठ माया न कभी भी रही सत्य यह ॥५॥

सत्य—सत्यात्मा

बात सच्ची लगे कड़वी जन कहें
बात सच्ची पर सदा हित साधती।
बात सच्ची सुनें पर जिज्ञासु ही
जिन्हें संगत सन्त की मन भावती ॥१॥

सुनें जन रोचक भयानक कथा भी
रहे विषयी या कि पामर लोक में।
पर सही जिज्ञासु को भाती सदा
जो यथार्थ कि पांय वे सत्संग में ॥२॥

तत्व के जिज्ञासु लाखों हों नहीं
लाल पन्ना कब करोड़ों ने गहे।
सत्य के शोधक पुजारो भी बड़े
क्या असंख्यों जन यहाँ हैं मिल रहे ॥३॥

सत्य केवल एक जग में पारहे
पर न सब अपना सके रह सत्य जो।
बोलते कोई यहाँ पर सत्य हैं
बोलबाला झूठ का कहते कि सो ॥४॥

भले प्रिय ना सत्य रह पर झूठ क्या-
हो सका प्रिय वचन हितकर सत्य वह।
सत्य तात्विक वस्तु वह मानी गई
तत्त्व वेत्ता हो लखाएँ सत्य वह ॥५॥

सत्य की बाजी लगी थी राम में
सत्य पथ सीता गहीं थीं राम सँग
सत्य के सेवो अतः लक्ष्मण तभी
चल पड़े थे वे वहाँ श्रीराम सँग ॥६॥

भीष्म में था सत्य पितु की भक्ति कर
हुए इच्छाचारि जीवन मरण में।
कृष्ण जिनसे हार कर कर विकटरण
टेक राखे शस्त्र यह तब युद्ध में ॥७॥

सत्य था हरिचन्द्र में काशी बिके
पुत्र पत्नी सहित विश्वामित्र को।
तुष्ट कीन्हें अत्यधिक वे कष्ट सह
सत्यवादी नृपति को जाने न को ॥८॥

सत्य व्यवहारिक रहे परमार्थ सत्
सत्य होता धर्म नित सबसे बड़ा।
सत्य सतियों ने तथा सत्पुरुष ने
ग्रहण कर आदर्श कीन्हा है खड़ा ॥९॥

सत्य वाणी में प्रतिष्ठित होरहा
सत्य मन में धार के मानस परम।
सत्य जो आचरण तन से हैं किये
सदाचारी लोक में रंह ना अधम ॥१०॥

सत्य हित प्रिय वचन रहता लोक में
सत्य साधे धर्ममय परलोक भी।
सत्य के आश्रित रहे सब लोक ये
समझलो यह सत्य व्यापक नित्य ही ॥११॥

सत्य से बढ़कर न कोई धर्म है
सत्य से बढ़कर न कुछ सत्कर्म भी।
सत्य से बढ़कर धरा क्या होयगा
रह अधिष्ठाता सभी का सत्य ही ॥१२॥

सत्य की गति-विधि रहे सब सत्य ही
सत्य की महिमा बड़ी संसार में।
सत्य की जय वेद निसदिन कर रहा
विजय क्या लखते यहाँ निस्तत्त्व में ॥१३॥

(सत्यात्मा)

सत्य आत्मा और परमात्मा सही
सत्य चेतन ब्रह्म वह माना गया।
सत्य की आराधना साधक करें
साधनाएँ सफल पा जीवन नया ॥१४॥

सत्य का अस्तित्व रहता सर्वदा
सत्य का ही भान भ्रम को छोड़ के।
सत्य ही प्रियलोक में होता रहा
बात झूठी सो रहे मुख मोड़ के ॥१५॥

सत्य आत्मा इसलिए जो रह सदा
क्या किसी ने आत्म को मरते लखा।
सत्य वह परमात्म भी संशय न रह
सत्य ने सत्यात्म को अपना रखा ॥१६॥

सत्यमय यह आत्म रहता नित्य जो
आत्म से प्रियतम न कोई अन्य भी।
तथा हिततम आत्म से बढ़कर नहीं
सत्य-हित-प्रिय अत: रहता आत्म ही ॥१७॥

आत्म को वह सत्यता वाचा गही
पागई हितरूपता भी आत्म की।
तथा प्रियता आत्म की अपनाय के
सत्य-हित-प्रिय अत: वाणी मान्य की ॥१८॥

सिद्ध होता आत्म सत् सर्वत्र ही
नहिं निरात्मक वस्तु कोई लख रहे।
आत्म विन क्या ना वृथा अस्तित्व हो
विन निजात्मा कौन मैं तू कर रहे ॥१९॥

बात सच्ची बस स्वयं ही सत्य वह
जिसे नित्य परोक्ष रखकर बोलते।
चेतना निजकी नसी कब क्यों न तब
परम प्रेमास्पद स्वयं को लेखते ॥२०॥

शोध लो यह सत्य व्यापक आत्म या
दो कभी होंगे न थे रँह एक ही।
पड़ा भ्रम में अज्ञनर कर साधना
सिद्ध रह सत्यात्म पहचाने नहीं ॥२१॥

सब सच्चिदानन्द

जिसका कभी निषेध न होता, उसे सत्य बतलाते विज्ञ
जिसको कभी न भूलें सोही, भासे चित् जो ना अनभिज्ञ।
जिसमें कभी अरुचि ना होवे, सो ही रसमय है आनन्द
जिसको भिन्न न पाँय आत्म से, सो हम पाते परमानन्द ॥१॥

जब एक सच्चिदानन्द रहा, तब भिन्न असत् जड दुःख कहाँ ?
होता है किसको कैसा क्या, यह द्वैत पसारा दिखे यहाँ।
भोले हैं जीव कि भूले हैं, यह भूल तथा भोलापन भी
आया कैसे इसकी सत्ता, छाया यह कैसा बचपन भी ॥२॥

सोचें समझें ये बुद्धिमान्, प्राणी विचार से कहें यहाँ
छायो अशान्ति क्यों होय क्रान्ति, क्या भ्रान्ति समायी रहे यहाँ।
जो रहता सदा एकरस हो, परिणाम विकृति ना कोइ जहाँ
भाता प्रिय सुन्दर रूप सदा, सच्चिदानन्द वह भाव यहाँ ॥३॥

हम कौन देह देही चेतन, जड़ के अनुभविता हुए रहें
है निर्विवाद यह बात सही, प्राचीन लोग भी यही कहें।
जाग्रत् में जान रहे सब कुछ, वा सपने में हम पड़े पड़े
रच लेते दृश्य जगत् पूरा, सुख दुःख कि साधें बड़े - बड़े ॥४॥

फिर घोर नींद में भी सारे, सुख चयनमयी श्वासें लेते
हो जाते सत्-चित् से अभिन्न, जीवन व्यतीत हैं कर देते।
अथवा ध्यानी योगी होकर, जब त्रिपुटि एक ही हो जाती
ध्याता नहि ध्यान ध्येय कोई वह विलग-विलग हो दर्शाती ॥५॥

इससे तो यह ही है भाता, अविचार कहो अविवेक इसे
सबके भीतर छा जाता जब, तब हो प्रपंच दिखलाय इसे।
क्या ही अच्छा मतिमान मनुज, जो लेय आसरा अनुभव का
मिट जाएँ सारे द्वैत द्वन्द्व, सच्चित् स्वरूप भासे सबका ॥६॥

क्या है सत्य ?

दृश्य जगत् की वस्तु मात्र ये, आतीं हाथ छिटक जातीं
हिम करिका सी प्रति क्षण घुलतीं, विनशन शीला सब मातीं।
लखते-लखते दृश्य बदलते, किसे काल ने ना छेड़ा
मझधार में पड़ा बड़ा क्या, सुस्थिर रहा सुदृढ़ बेड़ा ॥१॥

क्या है सत्य स्वप्न सारा, जगते हाथ न कुछ आता
वर्तमान भी भूत हुआ वह, स्मृति पथ में केवल भाता।
अनुभव के संस्कार मात्र बस, बने धरा के परिचायक
सत्यं शिवं सुन्दरं सोधें, सुधी यहाँ शोभा धायक ॥२॥

सत्य शिव

परम सत्यशिव सुन्दर केवल, एक सभी विध पाते
अतिशय प्रिय भी सबका, सबमें पाय जिसे हरषाते।
कितने किन्तु पारखी जग में, हीरा पन्ना परखे
कंकड़ पत्थर घिस - घिस प्रायः, लाल जवाहर निरखे ॥१॥
सबमें वसा सभी हैं चाहें, सबकी आँख जहाँ है
परम रम्य वा परम श्रेय भी, परमानन्द वहाँ है।
पाते नहीं परन्तु सभी जो, बहिर्मुखी विषयी जहँ
पुण्य पुञ्ज नहिं कृपा ईश की, सन्त शरण न गहो जहँ ॥२॥

सदा सच्चिदानन्द

इन्द्रिय तथा मन के विषय, लौकिक अलौकिक कोइ भी
आकृष्ट उसको ना करें, वे आत्म वेत्ता को सभी।
होवे जगत् का दृश्य सुन्दर, अति मनोरम भी बड़ा
विचलित न करता कष्ट भी, कोई बड़े से भी बड़ा ॥१॥
है धीर वीर सुधीर ज्ञानी, तत्त्वदर्शी जो रहा
है जो परम शिवरूप, स्वात्माराम जिसको है कहा।
उसको भ्रमाती कब विषय, तृष्णा कि वह माया नदी
जो ज्ञान गंगा रूप को, पाया नहाया नित नदी ॥२॥
सन्तृप्त रह वह सुधा - सम, उपभोग सन्तत कर रहा
पद मोक्ष का जो है स्वरूप - स्थिति उसी मे रम रहा।
रमना रमाना भी न कुछ, यह कथनमात्र सुहाय है
निज में न निजका ग्रहण, कुछ आनन्दमय नित भाय है ॥३॥
कथनी न करनी और रहनी, या त्रिपुटि नहि भिन्न कुछ
द्रष्टा न दर्शन दृश्यमय, कोई न भासें द्वन्द्व कुछ।
एकत्व हो जब हो गया, जीवात्म का परमात्म का
यह दृश्य जग जड़ क्या रहा, नाता लिए रह आत्म का ॥४॥
गुरु शिष्य ईश्वर धर्म जो, कि उपास्य और उपासना
सार्थक सभी वह हो गए, कर्तव्य किंचित् मात्र ना।
रह गया बस जो था रहा, आगे जिसे रहना सदा
यह काल भेद न कोइ तँह, सच्चित्सुखात्मा सर्वदा ॥५॥

सत्य के ग्राहक कितने ?

दे रहा है रत्न रत्नाकर सदा
ग्रहण विरले हो किये वसुधा तले।
सुमन कलिकाएँ विकसती आ रहीं
योगियों के ही हृदय पंकज खिले ॥१॥

भक्त ही भगवान् को पहचानते
भक्त ही उनकी उतारें आरती।
भक्त ही सिञ्चित सुमन की वाटिका
कर रहे अपनी सफल ये भारती ॥२॥

रहे व्यापक विभव ईश्वर का सभी
भक्त मानस में तदपि विकसित रहा।
पड़े औंधे घड़ों को कब वृष्टि ने
भरा, वारिद बूँद भी दुर्लभ अहा ॥३॥

शोध करते सत्य की कुछ लोग ही-
साधना चाहें न सारे सत्य ही।
लोक में सत्यं शिवं वा सुन्दरं
रहे अतिशय वस्तु क्या लखते सभी ॥४॥

हो न चिन्तित सत्य चिद्घन वपु कभी
हाय ! मुझे आनन्दघन को ना लखें।
कब बिलखता लखा अज्ञ समाज ये
जँह कि आस्तिक भक्त नित श्रद्धा रखें ॥५॥

दे रहे भगवान् जो करके ग्रहण
रह रहे नित मुदित मन ये भक्तजन।
पल रहा संसार पालक का यही
सृजन - रक्षण - संहरण विश्वायतन ॥६॥

लख रहे जग का नियन्ता सर्वगत
ईश अन्तर्यामिता करता सधा।
चर्म चक्षुमयी न इसको लख सकी-
सृष्टि, यह जो तमोमय पाती विधा ॥७॥

हैं दिवान्ध अनेक रँह कामान्ध भी
लोभ से अन्धे तथा व्यामोह से।
तथ्य कौन निहारता जगतीतले
तत्त्वदर्शी के सिवा दलदल फसे ॥८॥

सत्यमेव जयते नानृतम् (ध्रुव पद)

सतियों में हो सत्य धर्म क्यों वसुन्धरा अकुलाए
सत्य साधना साधु सन्त की स्वाँग न बनने पाए।
सत्यवादिता वक्ताओं में जो सब भाँति समाए
सत्याग्रही सभी वसुधा पर विजयी क्यों न लखाए ॥१॥ सत्यमेव०

नीति-निपुण दाता शासक मतिमान सदा उपकारी
शूरवीर तेजस्वी नेता मानवता जँह प्यारी।
लोभ रहित हों लोक हितैषी जनगण शुभ्र सुहाए
स्वार्थ हीन धन धान्य पूर्ण सब सेवाव्रत अपनाए ॥२॥ सत्यमेव०

विद्या विनय विवेक युक्त हों छात्र सत्य - व्रतधारी
शम दम संयमशील तपस्वी क्षमा सरलता भारी।
शुचि आस्तिक ज्ञानी विज्ञानी शुभ आचार विचारी
यज्ञ दान स्वाध्याय निरत हों भारत के नर नारी ॥३॥ सत्यमेव०

अर्थ पिशाच न व्यापारी हों उत्पादक हों भारी
कृषि गोपाल न कर्ता की भी होय न गति-विधि न्यारी।
अमृतमयी सेवा में विषसम न हो मिलावट कोई
धर्मघातिनी गोहत्यासी क्रिया न कोई होई ॥४॥ सत्यमेव०

सेवा सदा सेव्य की होती स्वयं न सेव्य बखानें
रोगी दीन दुखी की सेवा सब कोई पहचाने।
हो आचरण सत्य प्रिय हित का शान्ति सुधा सरसाए
तभी राष्ट्र में विश्वबंधुता समता जँह तँह छाए ॥५॥ सत्यमेव०

प्रजातन्त्र हो राजतन्त्र हो रहें न वाद विवादी
साम्य समाजवाद ना अर्थी कामी वा बकवादी।
श्रमजीवी वेतनिक वर्ग भी सच्चाई अपनाएँ
कामचोर मदखोर न होकर समय काटने आएँ ॥६॥ सत्यमेव०

बुद्धि जीवियों की गति सुधरे अर्थीमात्र प्रमादी
रहें न कोइ व्यसन भी उनमें हों मानवतावादी।
आध्यात्मिक गति ग्रहण करें जन ताप न कँहि नियराए
सत्यमेव को विजय पताका विश्वमाँहि फहराए ॥७॥ सत्यमेव॰

दुहाई कभी सत्य को ना सुहाए
सुगन्धो न कर्पूर सौगन्ध खाए।
नहो सत्य को रोति मिथ्या लखानी
सहो वेद वाणी सुधी में समानी ॥८॥ सत्यमेव०

सत्य धर्म की प्रतिष्ठा

सत्य अहिंसा से स्वराज भारत में आया
हिंसा मिथ्याचार बढ़ा पर आज सबाया।
हिल-मिल भारत की जनता अँगरेज हटायो
डालो फूट करो शासन अंगरेजी छायी ॥१॥

गाँधोवाद स्वराजपूर्ण पाने में विजयी
रहा किन्तु अव ध्वस्त कर रहे हुए जो जयी।
राष्ट्र प्रेम नहि, सदाचार नहि, नहि समाज की-
सेवा, धर्म कर्म सब तज के सजा पालकी ॥२॥

चढ़ विवाह करना सब चाहें राजनीति से
बधू नहीं वारांगना बनाकर बड़े प्यार से।
नेता ये सर्वस्व हरण कर लेता उसका
देता नहि जनगण को कोई फल स्वराज का ॥३॥

रामराज का स्वप्न सँजोया गान्धीजी ने
करी प्रतिष्ठा कामराज की नेतागण ने।
ह्रास धर्म का या उपहास कर रहे पूरा
अर्थकाम के प्यासे पद पाने को शूरा ॥४॥

राजनीति से रामराज नहि कभी सधेगा
सत्य धर्म को ग्रहण किये बिन जन न जगेगा।
आस्तिक साधु-सन्त नर-नारी भक्त राम के
हैं अधिकारो ऋषि सन्तानें रामराज्य के ॥५॥

यतोधर्मस्ततो जय**

विश्व समस्त सनातन धर्मी वैदिक सारी-
प्रजा राम की इसी भूमि पर प्रगटी प्यारी।
ईश्वर के अवतार यहाँ ही होते आए
धर्म भूमि पर सत्य प्रतिष्ठित करते पाए।।६।।

राम-राज्य तथा राम का सन्देश

रमो आत्मालोक में अय मानवो!
कह रहे हैं राम अवध नरेश ये।
वध न हिंसा दोष कोई रह जहाँ
धर्म की जय सत्य की जय रहे ये।।१।।

दूर हिंसा से रहो हिन्दू कहें
विश्व प्राणी मात्र को दे अभय जो।
भावनाएँ सत्य की विघटित न जँह
राम का त्रयताप नासक राज्य सो।।२।।

नित्य सुख पाये बिना आराम क्या?
राम बिन सत्ता सधी क्या कँही भी।
राम आत्मा राम अवतारी तथा
राम राजा राम सोहँ एक ही।।३।।

राम को समझे बिना नहि भक्ति हो
राम को पाये बिना क्या शक्ति हो।
राम निर्गुण सगुण शिव-स्वरूप हैं
रहे आत्मा गहें परमात्मा कहें।।४।।(भक्त-भक्ति भगवान् में भी)

सत्य की ही विजय होती है

विजय सत्य की, नही असत् की हुई वेद वाणी ये
क्या है सत्य असत्य कौन सी वस्तु-स्थिति मानी ये।
सत्य यथार्थ वस्तु हो जैसी वैसी सदा सुहानी जो
नहि अस्तित्व मिटा है जिसका कभी, सभी में भाती जो।।१।।

तद्विपरीत असत्य मान लें सीधी सच्ची बात रही
झूठी बात झूठ वह सारा असत् प्रतिष्ठित जो न सही।
है उत्कृष्ट निकृष्ट, असद्, सभी लोक में लखते हैं
सत् है धर्म अधर्म असत् मिथ्या कह विज्ञ परखते हैं।।२।।

विजय पराजय जीत हार वह दोनों की गति दिखलाई
साधक सत् बाधक क्रमशः ये असत् सुगति दुर्गति दाई।
ऐहिक और अलौकिक पथ भी इसी दिशा में पहचाने
नित्य सिद्ध या भ्रान्ति सिद्ध अस्तित्व झूठ सच हैं माने ॥३॥

देशकाल क्या वस्तु सभी इस रीति असत् सत् है पाने
सत् को पाय प्रहर्षित होते असत् पाय हैं घबराते।
है सद्भाव सत्य का सब दिन असत् अभाव रूप होता
हो तत्क्षण कालान्तर में या ग्रसित न तात्त्विक जो होता ॥४॥

ग्रहण अग्रहण रूप हुए दोनों विचार से
वाणी से व्यवहृत दोनों ये इस प्रकार से।
हुए विवेक धीर तत्त्वदर्शी विजयो भी
अविवेकी असफल प्रवृत्ति या पराजयी भी ॥५॥

सत्य का सदा बोलबाला

सदा है सभी देश में आ समाया
सदा ही सभी काल होके लखाया।
सदा है सभी वस्तुएँ नाम धारें
चिदाकाश की रूप रेखा निहारें ॥१॥

सदा है स्वयं में रहा नित्य बोले
सदा तूं बना दृश्य की काय तोले।
सदा भोग्य होता सुहाया सभी है
सदा सत्य का बोलबाला रहा है ॥२॥

सत्य की पहचान

सत्य विरले गहे समझे विज्ञ नर
आत्म सब ओङ्कार सब रह ब्रह्म सब।
सुनें अगणित वार माया मोह में
फसे, कहते सत्य क्या समझें न तब ॥३॥

धन बटोरें तुच्छ जो कि अनात्म जड़
सभी उलटे या कि सोधे काम कर।
श्रुति सुने धन मत चहो वह किसो का
हुआ क्या फिर 'मा गृधः' श्रुति बोलकर ॥४॥

कँह 'अहं ब्रह्मास्मि' उत्तम वाक्य भी
समझ लेते कोई ब्रह्मा सही मैं।
सृष्टि घर में नगर में उपजा रहा
रहूँ मैं गृहपति प्रजापति सभी मैं ॥५॥

चल रहे कल कारखाने सभी तो
मैं चलाऊँ उन्हें जो निज शक्ति से।
रहूँ कर्ता और धर्ता सभी का
कहें गोस्वामी कि भूस्वामी मुझे ॥६॥

है सभी कुछ ब्रह्म 'सर्वं खलु इदं'
कह रही श्रुति ग्रहण किसका त्याग फिर।
बात सच्ची रहे पर रागी हुए
दुखी रहते दृश्य को सत् समझकर ॥७॥

दृश्य परिवर्तित रहे नहि सत्य पर
विज्ञ होकर भी पड़े भ्रम में बहुत।
सही जो पहचान होय विवेक से
वाच्य ज्ञानी हुए पर भी हो न हित ॥८॥

सत्य का ही हो ग्रहण नहि असत् का
सत्य ही रहता सदा अस्तित्व में।
कब अभाव प्रभावशाली हो सका
असत् बध्यापुत्र आया पकड़ में ॥९॥

जब सत्य व्रत का हो वरण तब झूठ क्या ?
आहार करती ग्रहण कुछ क्या इन्द्रियाँ।
पति का वरण करके सती विचलित न हो
पाती प्रतिष्ठा लोक में सदवृत्तियाँ ॥१०॥

सत् स्वरूप सदगुरु

पाय सद्गुरु - सन्निधो सत् पा गया
छा गया व्यवहार में सत् तभी वह।
पारमार्थिक सत्य केवल एक है
जो सदैव विशेष्य रहता मुख्य वह ॥१॥

रह विशेषण रूप सत् भी जँह कँही
गौण गुण जो छा रहा व्यवहार में।
सज्जनों में सन्त में सत् वर्तता
सत्य आवश्यक रहा आचार में ॥२॥

रहा वाणी में सुजन के सत्य है
क्रिया उसकी सफल सद् व्यवहार से।
कार्य विधिवत् हो रहें सत् कर्म सब
जन सदाचारी रहें सद् ग्रहण से ॥ ॥

सद्विचारों से लसे वह सत्य ही
गुणों में सत् छाय सद्गुण हो गये।
सती नारी सत्य गह कर ही हुई
धर्म में सत् रहे हो सद्धर्म वे ॥४॥

संग सत् का हुए से सत्संग हो
मार्ग सत् होता तभी सन्मार्ग भी।
सत्य बोधक सदुपदेश कहा गया
वस्तुतः सद्वस्तु केवल एक ही ॥५॥

गुरु कृपा से सत्य पाते शिष्य हैं
गुरु मिले तम असत् नासे सभी का।
गुरु अतः सद्वस्तु बोधक सद्गुरू
आत्म ब्रह्म अभिन्न मत गुरुदेव का ॥६॥

सत्य व्यापक सब जगह यों देख लें
हो असत् की पैठ तब फिर क्या वहाँ।
बोलबाला सत्य का सब भाँत हो
आचरण में जब कि सत् आता जहाँ ॥७॥

व्यावहारिक जगत् में सत् छायगा
आयगा सतयुग यहीं सबके लिये।
सत्य की होगी विजय जन-जन कहें
गुरु यहाँ सद्रूप स्वयं लखांय ये ॥८॥

सन्तों में सत्

बड़ी लक्ष्मी कहाँ नारायण विना
शक्तिशाली पुरुष होता शक्ति से।
मनुज भी बिन मनुजता केवल लसा
दृष्टि बिन त्यों अन्धतमता ना नसे ॥१॥

दृष्टि खोलें लखें जीवन की घड़ी
प्रकृति को परमेश नित्य सजा रहा।
परम सत्ता छा रही अव्यक्त की
व्यक्त सज्जन सती सन्तों में महा ॥२॥

टिकी वसुधा सत्य पर सन्देह नहि
सत्य सेवी सत्स्वरूपी सन्त हैं।
साधु जीवन साधती रहती सती
सत्य पालन कर रही ऋषि मुनि कहें ॥३॥

है सुमिक्ष सदेव सन्तों के लिए
सज्जनों में पैठ उनकी बड़ी रह।
सन्त बिन सूना जगत् समझें सुधी
राष्ट्र की भारी महत्ता सधे वह ॥४॥

शान्ति का साम्राज्य सन्तों के निकट
क्रान्ति घोर अशान्ति बढ़ती सन्त विन।
भ्रान्ति है सद्वस्तु के जाने विना
सत् समाया सन्त में रह रात दिन ॥५॥

युग-युगों से सन्त साधे ईश ने
ले रहा अवतार सन्तों में वही।
सधे सतयुग सन्त से नहि अन्य से
होय नवयुग कहीं कुछ दूजा नहीं ॥६॥

सज्जनों की बाढ़ सतयुग में रहे
दुर्जनों का कलह कलि में छारहा।
एक तन-मन-वचन से शुचि सन्त रँह
सन्त से विपरीत अह! दुर्जन रहा ॥७॥

सन्त जीवन सरस सदुपासक कहा
सन्त मिलते सत्य मानो मिल गया।
सन्त की ले शरण सत्याचरण रह
ज्ञान पाके सन्त से भव तर गया ॥८॥

सन्त संगत

सन्तों की संगत से जग में, क्या नहि मानव पाते
सत्पथ पर आरूढ़ रँहे गे, सबको सत्य लखाते।
आध्यात्मिक गति रहती इनकी, राम भरोसे रहते
सद्व्यवहार करो समझाते, भजो सदा शिव कहते ॥१॥

भूख लगे पर भोजन पाएँ, प्यास लगे पर पानी
मन प्रसन्न हो जाता सन्तत, सुने सन्त की बाणी।
भजे साम्ब शिव तजे कामना, लोग मतलबी सारे
जागे शिव स्वरूप में निसदिन, सोवै पैर पसारे ॥२॥

चिन्ता व्याप रही मरने ना, जीने की भी कोई
ममता मोह अहन्ता नासो, होनी हो सो होई।
जीवन शुद्ध सरल अपनाए, रह असंग सब माँही
जगत् मित्र दिखलाता सारा, परमानन्द समाँही ॥३॥

नाते गोते सभी झूठ, दुनिया के सारे
रहे स्वाँग करते आए जो नाटक चेटक न्यारे।
मिला यहीं नर को नारायण, जिसके नित्य परायण
अहो जीव शिव रूप निहारा, सन्त कृपा अनपायन ॥४॥

भेदवाद सब द्वन्द्व नसाने, त्रिविध ताप की खाई
परी लटी नहि रही नटी, मति हर्षी शुभगति पाई।
सभा पूर्ण पुरुषार्थ मुक्ति की दशा यहाँ जो आई
पूर्ण कृपा गुरु कृपा ईश की, फली आत्म सुखदायी ॥५॥

साधु जीवन (सत्य का साक्षात्कार)

त्यागमय जीवन तपोमय साधु का
रहे ज्ञानी पूर्ण योगी भक्त भी।
कर्मठों के बीच कर्मठ भी बड़ा
वीतरागी वन्द्य विद्वन्मान्यभी ॥१॥

शान्त सौम्य स्वभाव सरल-प्रकृति भी
संयमी शुचिता मधुरता धीरता।
सध रहो सर्वात्मता उपकारिता
फलरही परमार्थता मुदिता लता ॥२॥

द्वन्द्व कोई नहीं द्वैत निवृत्त जो
फन्द बन्धनकारि फिर होगा कहाँ।
मन्दबुद्धि न जान पाएँ जिसे पर
प्राप्त करलेता परमपद वह यहाँ ॥३॥

रहे ना अध्यास या आसक्ति कुछ
वासनाएँ गलित हुँइ फिर व्यसन क्या।
आग्रह न संग्रह परिग्रह का कँही
नस गया अज्ञान फिर तम रहा क्या ॥४॥

सन्त की स्वाभाविकी संस्थिति सधी
साधना या सिद्धि का चक्कर नसा।
होगया साक्षात् सत्य स्वरूप का
आत्म में परमात्म जो पाकर बसा ॥५॥

सफल सन्त जीवन

जागतिक जीवन न जीवन वस्तुतः
जाँयगे परलोक तब हम जिएँगे।
बात यह भी उचित ना तब क्या उचित
रह सही जो सन्त जीवन गहेंगे ॥१॥

सन्त जीवन से परे जीवन नहीं
सन्त जीवन से तरें भव सिन्धु यह।
सन्त जीवन से बड़ा सम्राट पद-
हो नहीं सकता सरित जलविन्दु वह ॥२॥

सन्त वह जो सार्वदिक रह एक रस
सत्स्वरूप स्थिति सँभारे सर्वदा।
बिना जिसके जन असंख्यों वार ही
मरें जन्में जीव जग के वे सदा ॥३॥

सन्त वे संसार तज भागें नहीं
सन्त रहते जगत् में उनमें न पर।
जागतिक गतिविधि रहे कोई यहाँ
सन्त जीवन पाय जीवन्मुक्त नर ॥४॥

त्याग तप रह धैर्य सच्ची लगन भी
सफलता ध्रुव सत्य सन्तों की शरण।
किये आदर ध्यान रख सादर यहाँ
क्या नहीं पाते यहाँ तन धन स्वजन ॥५॥

सन्त को पाना न खोना रहे कुछ
मुक्त जीते जो हुआ संसार से।
रह रहा संसार में पर दृष्टि से
वस्तुतः निजरूप में रहता लसे ॥६॥

चिन्ता शोक न मन में आवे, सदा प्रसन्न सात्विकी भाव
सुख दुख हानि लाभ ना लेखे, ग्रहण त्याग का हो न स्वभाव।
देह गेह देशादि परिग्रह, संग्रह त्याग न अन्य सुहाय
द्वैत द्वन्द्व द्विविधा सब छूटे, स्व-स्वरूप सुस्थिर मति भाय ॥७॥

ज्ञानी गुणी शान्त शुचि दाता, पर उपकारो यहाँ लखाय
स्वार्थ नही रहता भूतल पर, अतः कहीं यह आय न जाय।
आशा तृष्णा मिटी जगत् को, करने धरने को नहि बात
जीवन्मुक्त हुए वसुधा पर, बिचरें सन्त शुभ्र दिन रात ॥८॥

सत्पुरुषों की रहनी

सुजन सज्जन होय साधु स्वभाव भी
सदाचार समाज में पनपा सभी।
दूर दुर्गुण दुराचार न रह तहाँ
सन्त की रहनी मनुज ने जो गही ॥१॥

छा गया साम्राज्य सत्पथ स्वच्छ भी
सत्वगुण के बढ़े सतयुग आ गया।
सुकृत होने लग गये सत्कर्म सब
समय सुन्दर सुखद सबको भा गया ॥२॥

शान्तिमय जीवन धरा पर सोहता
क्रान्ति क्या वह हुइ कहो उत्क्रान्ति हो।
भ्रान्ति नासी क्रान्ति या कमनीयता
सत्त्वमय शुचिता सरस फैली रही ॥३॥

द्वन्द्व कोई रहें ना रह द्वैत जँह
भा गयी अद्वैत की गरिमा महा।
ब्रह्मविद्या बुधजनों के हिय बसो
श्रेय की सरणी समाज वहाँ गहा ॥४॥

स्वर्ग का साम्राज्य पीछे रह गया
ढह गया अज्ञान गढ़ जो लड़खड़ा।
बह गया सब पाप पंक समाज का
ज्ञानगंगा का प्रवाह चला बड़ा ॥५॥

हो गया आनन्द परमानन्द नित
स उत्सव क्या बसन्त बहार भी।
मने दीपावलो सन्तत सन्त के
लसो तत्त्वज्ञान की शोभा सभी ॥६॥

सभा भरती ज्ञान गोष्ठो परम वह
साधु - संगति कहो सत्संगति बढ़ी।
है परस्पर प्रीति नित आत्मीयता
विश्व में होती सुदृढ़ स्वर्णिम कड़ी ॥७॥

दिखे कोइ बिगाड़ ना इस लोक में
रहेगी तब क्या सुधारक योजना।
साधता परमार्थ केवल कहो या
सार सम्यक् साधता संसार ना ॥८॥

सन्त साधना
(साधु की देन)

निरत रंह बहुजन सुखाय हिताय कुछ
हों कहीं स्वान्तः सुखाय प्रवृत्तियाँ।
लोक उपकारी सदा हो सन्त को
सेतु सम साधक हुइं उपलब्धियाँ ॥१॥

गुण ग्राही सन्त बिरले लख पड़े
छिद्र मणिमय भवन में भी कीड़ियाँ।
देखती प्राकृत जनों की प्रायशः
होंय त्यों ही दोषमय सब दृष्टियाँ ॥२॥

स्वयं की छाया न दुखदायी हुई
अन्य की छाया अँधेरी ला रही।
धन्य जिनको अन्य की कृति भा रही
रहीं रुचि कर सभी रचनाएँ निजी ॥३॥

अर्थ की चिन्ता कभी नहि साधु को
होय क्यों परमार्थ साधन में लगा।
रह अनर्थों की महा जड़ अर्थ जो
तभी त्यागी तपी हो जग से भगा ॥४॥

भले! वह व्यापार साधे गौण सब
मुख्य तो रह मोक्ष पथ पर जो चला।
देह की नहि गेह की चिन्ता करे
लख अनात्म प्रपंच क्यों साधे भला! ॥५॥

मानता कर्ता न भोक्ता आपको
पाय तत्त्वज्ञान निष्ठावान् हो।
नित्य-शुद्ध-विमुक्त आत्मा को लखै
दृश्य को मिथ्या समझ क्यों रमे सो ॥६॥

शक्तियाँ सब रम रहीं इस देह में
हुईं मन की वृत्तियाँ अठखेलियाँ।
कर रहीं पा चेतना चैतन्य की
बोलने वे लग पड़ीं सब बोलियाँ ॥७॥

साधु रमता अतः आत्मस्वरूप में
धरा की धन की न पद की कामना।
विपद में रहकर स्वपद की सम्पदा
साधता निश्चिन्त जीवन साधना ॥८॥

सत्संगी

हृदय श्रद्धा से भरा भरपूर रह
मन लगाकर करे सेवा सन्त की।
स्वार्थ कोइ न साधता निष्काम रह
कामना केवल रही कल्याण की ॥१॥

नाम काम न चाहता धन धाम नहि
मिले पुत्र कलत्र पद सुखदायी सभी।
वस्तुओं की वासना न अनात्ममय
आत्म के उद्धार की बस धुन रही ॥२॥

लक्ष्य रह सत्संग का नहि असत् की-
गन्ध कोइ सुहाय बस परमार्थ ही।
भाय निसदिन स्वच्छ हिय जो हो रहा
क्यों न सत्संगति फले शुचि शान्ति भी ॥३॥

मिलें भक्तों को सदा भगवान् भी
हृदयपंकज खिले सुरभित हो उठे।
रंग पक्का चढ़े जो सत्संग का
मोह निद्रा भंग हो जागे उठे ॥४॥

स्व-स्वरूप - स्थित रहे साक्षात्कर
गीत गाता शिवं सत्यं सुन्दरम्।
भीत क्या होना अभयपद पा गया
सत्य का तब संग क्या सत् रह स्वयम् ॥५॥

जागतिक वृत्त में सन्त

रीझ पर भी खीझ जग में लख पड़ी
सत्य पर भी झूठ हावी रह न क्या।
रीत पर अनरीत होय सवार भी
प्रीति में विपरीतता आश्चर्य क्या ? ॥१॥

लोक में लीला अलौकिक भी लखें
शोक में निःशोक ज्ञानी रँह सदा।
मोह में निर्मोह भी रहते लखे
मान में अपमान होय यदा कदा ॥२॥

हो किसी को ग्राह्य वह ही त्याज्य रह
त्याज्य होता ग्राह्य जन सामान्य में।
पुण्य कोई पाप सा ही समझ वह
दृष्टि ओछी रखें जो सत्कर्म में ॥३॥

पालते नहि नीति नेह अनीति में
रह पुरातन पृथा से भी घृणा-सी।
कर कुठाराघात भी आचार पर
सद्विचारों पर असत् की मार-सी ॥४॥

जिसे जो हि सुहाय सो अपना रहे
तत्त्व जैसा रहा वैसा ही लहा।
सन्त ने नइ रीति-भीति न प्रीति रख
कहीं कुछ थोपा न रोपा सब सहा ॥५॥

कांपती बसुधा न क्या सन्तप्त रह
पड़े पानी तपा लोहा तिलमिला।
चटक जाता छिन्न-भिन्न तवा तभी
सन्त पर सिमटें न चिपटें मन हिला ॥६॥

अहो! रहनी सन्त को रह एकरस
जिएँ साध समाधि अगणित वर्ष भी।
हिलें डोलें नहीं समता जो रखे
च्यवन ऋषि वाल्मीक से थे अडिग ही ॥७॥

द्वन्द्वमय सब दृश्य लखकर वे तभी
सन्त रँह निर्द्वन्द्व साक्षीमात्र से।
लोक के व्यापार कोइ प्रभाव कुछ
डालते नहि सन्त सर्वोपरि लसे ॥८॥

सन्त एकरस

नहीं दृश्य थिर कोई रहता निहारा
नहीं भूमिका देश को एक-सी हो।
नहीं कोइ क्षण जो विलक्षण रहा ना
सदा सन्त पर एक सी वृत्ति धारे ॥१॥

नहीं देह की गेह की सब दशाएँ
नहीं प्राण मन इन्द्रियां भी बिचारें।
नहीं बुद्धि या शुद्धि नित कायिको भी-
रही एक-सी सन्त पर एकरस हैं ॥२॥

नहीं लोक सत्ता नहीं पेड़ पत्ता
नहीं माल मत्ता नहीं रात दिन वा।
नहीं पाँच अँगुलि कहीं एक सी हुँइ
रहें सन्त पर एक परमार्थ धारे ॥३॥

नहीं प्रीति की रीति प्रेमी जनों की
गले ना लगी देख पाते सदा ही।
भले प्रेयसी श्रेयसी भी यहाँ हों
मिली सन्त की वृत्ति पर एक सी ही ॥४॥

स्वजन भी स्वजन ना रहें सर्वदा वे
न दुर्जन सुजन दृष्टि भी ये मिलाते।
न परिजन न पुरजन हुए एक से ही
अहो! सन्तजन एक से पर लखाये ॥५॥

साधु जीवन

परमार्थ पथ के हैं पथिक, जो साधु सन्त लखा रहे
नहि मानुषी या दैव धन के, वे रसिक सरसा रहे।
अर्थी जगत में बहुत हैं, स्वार्थी कहा संसार है
त्यागी तपोधन ज्ञान धन, परमार्थ का आधार है ॥१॥

बाहुल्यता रह कंकड़ों, या कांच खण्डों की यहाँ
हीरा जवाहर लाल पन्ना घने ना पाते यहाँ।
नवनीत थोड़ा ही रहे रह तक्र की मात्रा बड़ी
उत्तम प्रकृति कम ही रहे, मध्यम अधमता रह बड़ी ॥२॥

सोचो कि हम हैं कौन, केवल साधु कोरे बन रहे
नहि स्वाद छोड़े एक भी, ना साधना शुचि हो गहे।
आदर्श की बस बात हो, आदर्श मन मैला रहा
दर्पण कहो कैसे वहाँ, निज रूप भी दर्शे अहा ॥३॥

नहि आत्म दर्शन हुए कोई, साधना या सिद्धि की
होगी परख नहि देह देही, की न सत्यासत्य की।
सत्संग से सत् शास्त्र से, सदुपासना के किये जो
सद् बुद्धि होगी प्राप्त तो, भासे निजात्म स्वरूप सो ॥४॥

परमार्थ सत्य

सत्य में उपजी न भेद प्रकारता
पारमार्थिक तत्त्व दो नहि एक हो।
सत्य का क्या भेद सत्य करे कभी
असत् जो होगा असत् वह मृषा हो ॥१॥

व्यावहारिक भेद अगणित भा रहे
रहें केवल इन्द्रियों के वे विषय।
बुद्धि से जब भेद कोई ना लखे
सत्य एक सदैव रहता निरतिशय ॥२॥

सत्य नारायण रहे हैं एक ही
नाम लक्ष्मी ने गढ़े अत्यधिक ही।
रूप वस्तु स्वरूप का क्या अन्य कुछ
लक्षणों से हुआ उसका वह सही ॥३॥

सत्य को करवट न परिवर्तित हुई
सत्य को छवि सदा रहती एकसी।
सत्य में भ्रम किसीको क्या हुआ भी
मन्दमति की गति न रहती एकसी ॥४॥

बुद्धि ही सद्-असत् को करती विषय
रहा विषयी सत्य सब दिन सत्य हो।
असत् की चादर असत् ओढ़े फिरें
मरु - मरीची क्या निहाल करे कभी ॥५॥

सत्य की कोई उपज नहि असत्-सत्
सत्य रह व्यापक तथा परिपूर्ण भी।
सत्य कब अवकाश देता असत् को
अहो सद्घन रहा चिद्घन सुखद ही ॥६॥

सत्य की पूजा अतः सर्वत्र हो
सत्य की महिमा सदा बढ़ती रही।
सत्य की पतवार ले भव से तरे
सभो नर नारी कि वालक वृद्ध भी ॥७॥

सत्य रह सिद्धान्त श्रौत-स्मार्त यह
आदि अन्त न कह सके इसका कभी।
नित्य सिद्ध रहा जभी स्वमेव सत्
भला बिगड़े बने कँहि वह सत्य भी ॥८॥

कौन साधा सत्य को बतलाँय भी
तत्त्वदर्शी तत्त्व दर्शा रहे वस।
तत्त्व केवल सत्य शिव सुन्दर सधा
तथ्य सन्तों ने लखा या एक रस ॥९॥

एक रस नित एकसा ही सत्य है
एक रस रसमय 'रसो वै सः' रहै।
एकरस के रसिक भी रँह एकरस
मिले रस में रस बिलग किसको गहै ॥१०॥

सत्य को भगवान् कोइ लखा रहे
सत्य को परमात्म आत्म बखानते।
सत्य कँह वह पंच परमेश्वर हुआ
उसे पंचायतन में कुछ जानते ॥११॥

सत्यवादी सत्य को सद्वचन में
सदाचारी लखें सद्व्यवहारमय।
धर्म कर्मों में कछुक सत् देखते
सत्य प्रेमी सत्य को कहते विजय ॥१२॥

(परमार्थ सत्)

भासता अस्तित्व वह परमार्थ सत्
वस्तु प्रिय सर्वत्र नित्य स्वभाव से।
लखें अपने आपका अस्तित्व जो
सदा भासे सत्य प्रिय सुन्दर लसे ॥१॥

अन्न रस बनकर उदर में आ बसे
बिन्दु रहकर सिन्धु से लहरा रहे।
कौन थे कैसे कहाँ क्या राशि अब
पाय बारह वाट क्या तुम हो रहे ॥२॥

सत्य शिव सुन्दर तदपि तुम हो सदा
भले! आत्म स्वरूप अनजाना रहे।
इष्ट सबको होय प्रिय अस्तित्व निज
नहि अशिव, सुन्दर तभी सब हैं कहे ॥३॥

तूँ मान न मान सही पर तूँ
है नर नारायण - बन्धु हरे।
नर समझे अपने को कुछ भी
है जीव सदा शिवरूप हरे ॥४॥

तू नास्तिक भी बन, निर्धन तू-
बन भले! बुरे नहि कर्म करे।
रह पराधीन किंकर सबका
सबको न कहो खोटे कि खरे ॥५॥

धर्म-सनातन

धर्म ईश्वर तत्त्व एक कहा गया
तथ्य जीवन लक्ष्य रहता एक है।
सत्य धर्माचरण में उतरा न जो
शिव नहि शव व्यक्ति और समाज रहै ॥१॥

सदा धारण योग्य जो नहि त्याज्य रह
धारतो रह प्रजा कुल अनुरूप नित।
धरा धारे धर्म से ब्रह्माण्ड को
शक्ति पूरित धर्म वैदिक रह विहित ॥२॥

धर्म के आधार वेद पुराण हैं
सभी दर्शन शास्त्र वा इतिहास भी।
जिसे श्रुतियां सब तथा स्मृतियां कहें
कर्मकाण्ड उपासना वह ज्ञान भी ॥३॥

साधते शुचि साधना से लोक सब
यज्ञ दानादिक तथा परलोक भी।
धर्म पूर्वक योग तप कर्तव्य में-
लाथ के, वर्णाश्रमी तरते सभी ॥४॥

जो सदा से आ रही सद्धारणा
मानवी मस्तिष्क से नहि रचा जो।
भ्रम प्रमाद न विप्रलिप्सा दोष कुछ-
रह जहाँ पौरुष सनातन धर्म सो ॥५॥

धर्म संस्कृति तथा सभ्यता

धर्म के धारे सुदृढ़ संस्कृति रहे
ह्रास होते धर्म के संस्कृति नसे।
नसी संस्कृति सभ्यता क्या रहेगी
मूल नसतें विटप धरती में धसे ॥१॥

सभ्यता जो ना रही तब मनुज ये
हो असभ्य कि जंगली पशु तुल्य ही।
अतः धारे जन सनातन से यहाँ
धर्म युग-युग से पनपता रह तभी ॥२॥

धर्म से ब्रह्माण्ड की परिशुद्धि हो
परम सत्य प्रकाशता रह धर्म ही।
सभी दर्शन शास्त्र व्याख्या कर रहे
सांस्कृतिक संस्कार जीवन मूल ही ॥३॥

शान्त की संस्थापना निज धर्म से
भलीभाँत स्वधर्म पालक कर रहे।
नहीं परके धर्म को नासें न पर
भय न उपजाते कभी जो 'सत्' गहे ॥४॥

लक्ष्य निज-निज धर्म का रह शान्ति सुख
आत्मवत् सब प्राणियों में भाव सम।
राख के नहि परस्पर बाधक बनें
शुभ सनातन धर्म कँहि नहि रह विषम ॥५॥

धरा पर प्रगट हुआ सद्धर्म, धार कर जिसे करें सत्कर्म।
धर्म से पति जीवन मर्म, विरोधो केवल रहा अधर्म ॥६॥
मनुजना रहा धर्म से हीन, विना इसके जन हुए मलीन।
धर्म से धरा हुई है स्वर्ग, लखाता जन-जन में अपवर्ग ॥७॥

जहां नहि पतन फलाशाबन्ध, न मय बा मरण पाँच प्रतिबन्ध।
रहा जो नित पवर्ग से हीन, कहा अपवर्ग कि वर्ग विहीन ॥८॥

ज्ञानी नित कहें जिसको मोक्ष, मुक्ति पद स्व-स्वरूप अपरोक्ष।
धर्म वह साधे परमानन्द, काटता सभो दुःख के फन्द क्या द्वन्द्व ॥९॥

धर्म से अपवर्ग

धर्म वही जिसके धारे नर, नारायण पा जाय यहाँ।
वैर विरोध रहे नहि जिससे, समदर्शी सर्वत्र यहाँ ॥१॥
मानवता की चरम सीमा पर, जीवन चर्या सुखद बनी।
शिव स्वरूप सबमें लखकर जह, प्रेमसुधा पी रहा घनी ॥२॥

सदैव साथ दे रहा स्वधर्म कर्म आपके
सहाय क्यों न होयगा सु-देव पूर्ण आपके।
परोपकार ही बसे जँहा कि शुद्ध भाव से
वहाँ कमी रहे कहाँ समुद्र जो प्रभाव से ॥३॥

धर्मपाद

धर्म के थे चार पाद कहे प्रथम
तीन फिर दो रहे केवल एक अब।
लखें हैं प्रत्यक्ष फल पद-सत्य का
शान्त प्रायः यज्ञ तप दानादि जब ॥१॥

धर्म के कँहि तीन हो (स्कन्ध थे) वे स्तम्भ थे
दो शुभाशुभ या प्रवृत्ति निवृत्ति ही।
एक केवल सत्य कलयुग में फले
दोय द्वापर तीन त्रेता के सही ॥२॥

कहें चारों पाद सतयुग में रहे
यही कृत युग सत्कृती होंके रहा।
सत्य सुन्दर रहा नरहरि रूप शिव
नाम सार्थक क्या न होता तब कहा ॥३॥

राम त्रेता के प्रमुख अवतार रँह
कृष्ण द्वापर के जगत् है जानता।
जँह महाभारत प्रगट इतिहास ये
अन्ध वह कुरुराज कोइ बखानमा ॥४॥

कर्म फल अन्धा रहा सब देखते
पांच पाण्डव भक्त भक्ति किए हुए।
सफल है एतिह्य ज्ञानी विदुर का
धर्म पालक क्या न जोवन में हुए ॥५॥

धर्मावतार शंकर

जगनियन्ता धर्म का अवतार है
धर्ममय जीवन बने मानव तरे।
धारते वर्णाश्रमी रहके सभी
धरा मुदित रहे शंकर अवतरे ॥१॥

हुए वह आचार्य शंकर नाम से
हुई थी द्वादश शताब्दी जिन्हों जी।
रूप बहु विध धारते रहते अभी
रही भगवत्पाद संज्ञा उन्हीं की ॥२॥

धर्म मानव के लिए कल्याण कर
धर्म से सुख सम्पदा देवी लसे।
धर्म लौकिक पारलौकिक गतिप्रद
प्रगति सब विध होय जनकी धर्म से ॥३॥

युग युगों से धर्म की संस्थापना-
कर रहा है सुजन का रक्षण यहाँ।
सत्य का सद्व्रती सतियों सन्त का
कौन रक्षक बिना अवतारी यहाँ ॥४॥

सभी धर्माचार्य शंकर के ऋणी
कुम्भ द्वादश वर्ष के साक्षी सभी।
होंय अनुयायी सभी आस्तिक सुधी
हों न नास्तिक विरोधी वे तभी ॥५॥

अर्चना पूजा न केवल मूर्ति की
होय हिय में जो प्रतिष्ठा देव की।
मानकर सिद्धान्त श्रौत स्मार्त नर
तरे भव से वन्दना कर उन्हीं को ॥६॥

ईश के अवतार सारे जीव हैं
कला आंशिक रूप या आवेश भी।
रह अभिन्न सदैव जन ब्रह्मात्म से
व्यक्ति कोइ विशेष जो ना वह तभी ॥७॥

वेद मत वेदान्त जग में प्रगट रह
धर्म का सत्कर्म का योगादि का।
रह प्रकाशक सर्वविध परतत्त्व का
मुक्ति दात्रयतापहारी सभी का ॥८॥

धर्म मूलक वेद की रक्षार्थ भी
लिया था अवतार नित प्रति ले रहा।
सृष्टि कर्ता धर्मधारक स्वयंभू
स्वयं गुणमय अवतरा श्रुति ने कहा ॥९॥

धर्म की आचार्य शंकर ने ध्वजा
गगन में फहराइ दिग्विजयी बड़े।
धर्म की जय हो तभी आचार्यगण
ध्वनि गुँजाते आज भी निर्भय खड़े ॥१०॥

धर्म की जय

धर्म को जय हो उचारे सन्तगण
क्यों भला ना हो विजय जीवन हरा।
भरा पूरा शान्त और समृद्ध भी
होय जनता सुखी पीड़ित ना धरा ॥१॥

शास्त्र सम्मत सदा धर्म सनतनी
वर्ण आश्रम की व्यवस्था पूर्ण रह।
पथ प्रवृत्ति निवृत्ति का सन्देश दे
भोग मोक्ष प्रदायि भी रह धर्म वह ॥२॥

धर्म भू सत्कर्म भू भारत रहा
सृजो विधि की रहेगी अध्यात्कम्।
नहीं भौतिक धरा केवल देह भी
त्रिविध सत्तापूर्ण रह ब्रह्माण्डम् ॥३॥

धर्म जोड़े लोक वा परलोक से
धर्म को वह ध्वजा फहरावी सदा।
धर्म को संस्थापना हरि कर रहे
विजय दायिनी सुख प्रदायिनो सर्वदा ॥४॥

धर्म की जय हो अतः उद्घोष ये
करें श्रद्धापूर्ण नर नारी सभो।
बालवृद्ध स्वभाव से उत्साह से
सन्तवृन्द पुकारते रहते तथी ॥५॥

यतो धर्मस्ततोजय

धर्म धारण शक्ति पूरी धरा की
धर्म पूर्वक बिधि बिधान रचे सभो।
धर्म मानवता सजाता आ रहा
शून्य जगजीवन रहे बिन धर्म ही ॥१॥

सत्यता शुचिता तथा आचारता
सभी संयम साधना यमनियम भी।
मनुज प्रायः समझ कर कर्तव्य जो
धर्म में मतिराख वह करता सभी ॥२॥

धर्म मानव का प्रथम पुरुषार्थ है
विना धर्माचरण क्या हो जन सुखी।
पाप बढ़ता जाय धर्माभाव में
भारभूका जन - समाज रहे दुखी ॥३॥

धीरता क्षमता सुजनता सत्यता
दल न दोषों का जितेन्द्रियता सही।
शुद्धता अस्तेय चौर्याभाव भी
बुद्धि विद्या शान्ति साधे धर्म हो ॥४॥

सभी सद्‌गुण राशि दिव्य प्रभाव भी
ज्ञान आस्तिक भाव भगवद्भक्ति भी।
यज्ञ दानादिक क्रिया उपकारिता
दया प्राणीमात्र की सेवादि भी ॥५॥

धर्म से शुभ सम्पदा परलोक भी
सध रहा ऐहिक सभी विध अभ्युदय।
धर्म से सद्भाव प्राणीमात्र में
शास्त्र कहते यतोधर्मस्ततो जय ॥६॥

वस्तु तत्व एक

वस्तु केवल एक भगवत - तत्त्व है
भासता सारा उसी से दृश्य यह।
तत्त्वतः नहि पृथक उससे जगत ये
रहे व्यापक चिदाकाश अनन्त वह ॥१॥

वासुदेव स्वरूप में सब कुछ बसा
बसे सब में वही जो भगवान् हैं।
कौन उनसे बड़ा निर्गुण सगुण वह
वही जो परमेश ब्रह्म स्वरूप हैं ॥२॥

बालका कण से पृथक् नहि हुई रे
बालुका से पृथक् कण भी ना हुए।
राशि गेहूँ को न गेहूँ से पृथक्
सभी दानें जो अनन्त यहाँ हुए ॥३॥

बिन्दु जल के कण न जल से भिन्न हैं
नाम रूप अपार वे दिखला रहे।
बिलग हुंइ वे रश्मियाँ रवि से कहाँ
प्राण का संचरण श्वासों में रहे ॥४॥

जीव जग ये जो यहाँ नहि बिलग कुछ
रहा कोई अधिष्ठान स्वरूप से।
जिसे जगदाधार कँह वेदादि भी
अद्वितीय अखण्ड परिपूरण लसे ॥५॥

एकमेवाद्वितीयम् ❋❋

एक तत्त्व

धर्म एक सदैव सत्य सनातनः
ईश एक तथैव पूर्ण पुरातनः।
तत्त्व एक सदैव पूर्ण सुहावना
सज्जनों की सन्त की शुचि भावना ॥१॥

तत्त्ववेत्ता तत्त्व एक बखानते
सर्वगत रहता अतः सर्वात्म भी।
कह रहे सद्रूप चेतन विमल वह
मुक्त माया - मल - अविद्या से सभी ॥२॥

रह रहा परिपूर्ण समरस स्वरस भी
आत्म क्या परमात्म दूजा नहि लखें।
जो न जगता सोय भी सब काल में
है नियन्ता सभी का सबमें लखें ॥३॥

जागते जन नित्य ब्राह्म - मुहूर्त में
उठें बैठें कर रहे अभ्यास तब।
रह रहे निश्चिन्त चिन्तन तदपि अह !
योग ध्यान समाधि साधें सुधी सब ॥४॥

शक्ति जीवन - दायिनी सुखदा सदा
पा रहे संजीवनी बूटी महा।
होय तब अनुभूति नित ब्रह्मात्म की
भक्त जीवन्मुक्त ज्ञानी हो रहा ॥५॥

रम रहे हैं राम सब घट ब्रह्म या
कहा व्यापक ब्रह्म वह परिपूर्ण भी।
व्याप्त सबमें ईश वेद बखानता
खीझना क्या रीझना होगा तभी ॥६॥

वाटिका के पुण्य नाना रंग के
जाति नाना देखते भी हैं अमित।
सुरभि भी भीनी तथा उत्कट रहे
कौन किसकी करे तुलना रह चकित ॥७॥

दृष्ट इस संसार में सबका अहं
भिन्न-भिन्न प्रकार का लखते न क्या।
देह का सौन्दर्य इन्द्रिय वर्ग का
कला मन की बुद्धि भी अनुपम न क्या ॥८॥

ज्ञान विद्या विभव भी बहु भाँत रह
व्यावहारिक जगत् में नानात्व हो।
किन्तु ज्ञानी तत्त्व लखते एक हैं
जो रहे समरूप केवल आत्म ही ॥९॥

वृथा तुलना करें स्पर्धा परस्पर
व्यर्थ हो सामान्यजन इतरा रहे।
हम बड़े वह क्या हमारे सामने
बड़ा होगा सिद्ध बक-झक कर रहे ॥१०॥

हंस रवि है हंस जीवात्मा तथा
जो कि सोऽहं वस्तुतः अनुभव करें।
एक सत्य स्वरूप चेतन ब्रह्म नित
रहा सबमें सभी उससे अवतरे ॥११॥

भेद हम ही किये नसता कभी नहिं
कहे तू ही एक घट-घट में बसा।
हे प्रभो परमात्म शिव शम्भो कहो
आत्म होकर कहें हर मैं ही बसा ॥१२॥

फिर भला छोटा वड़ा क्या देखते
कहो तुलसीपत्र शालग्राम या।
बड़े छोटे कहे से अपराध हो
अतः 'ईशा वास्य' यह सब लखे या ॥१३॥

रह परम सन्तोष परमानन्द भी
एक समरख दृष्टि ज्ञानी सुबुध हो।
नहीं कुछ तत्वज्ञ से बढ़ चढ़ कहीं
बिना इसके द्वैत भेद नसे नहीं ॥१४॥

सभी त्रिपुटियों में एक ही तत्त्व

प्रभा भासती या प्रभा कर प्रकासे
प्रकाशित सभी वस्तु में कौन भासे।
प्रकासे रसातल प्रकासें सितारे
प्रकासें यहां सिन्धु के भी किनारे ॥१॥

प्रकासे चराचर जगज्जीव सारे
प्रकासें सभी रूप क्या नाम न्यारे।
जहाँ दृष्टि जाती वहाँ सृष्टि भासे
कहो दृष्टि अथवा कि द्रष्टा प्रकासे ॥२॥

प्रकासें कहें दृश्य यद्यपि यहाँ हैं
प्रकाशक कहो कौन रहता कहाँ रे।
त्रिपुटिमात्र है भिन्न आकार वाली
धरा है सभी की निराली-निराली ॥३॥

प्रकृति पर सभी की प्रभा पूर्ण भासे
प्रभाहीन त्रिपुटी न जग में प्रकासे।
प्रभा भानु की भानु से क्या विलग हो
लहर क्या कहो सिन्धु से भी अलग हो ॥४॥

अतः एक ही भासता है त्रिविध हो
प्रगट हो कभी या कभी अप्रगट हो।
सदा एक से हो अनेकों लखाते
उसे छोड़ के अन्य कोई न भाते ॥५॥

व्यापक सद्घन एक पूर्ण रह। दूजा कौन कहाँ बसता वह ॥
कहें सभी मिल के अज्ञानी। उत्तर एक दे रहा ज्ञानी ॥६॥
रह कैसी वह वस्तु निराली। ज्ञानी ने जो देखी भाली ॥
अपना आप एक ही पाये। निज समान कोई न लखाये ॥७॥

रेल होती एक डिब्बे भिन्न - भिन्न लखा रहे।
खेल होता एक पर नाना खिलाड़ी भा रहे ॥८॥
जेल होता एक बन्दीगृह कि बन्दी बहुत हों।
एक देही आत्म पर देहादि गेह अनन्त हों ॥९॥

ध्येय होता एक जिनका ध्यान हो परमात्म में
प्रेम भी उनका सधे प्रियतम लखे जो आत्म में।
श्रेय की भी साधना होती सफल जो तथ्य में
अध्यात्म में निष्ठा रखें रह या प्रतिष्ठा सत्य में ॥१०॥

तत्त्व एक

ईश्वर सबमें एक है। झांकी कहें अनेक है॥
कहती नाना रूप है। वस्तु न भिन्न स्वरूप है॥१॥
धर्म सनातन एक है। शाखाओं में भेद है॥
सदाचार शुभ सार है। सुख से सबको प्यार है॥२॥
आध्यात्मिक पथ एक है। गतिविधि रहो अनेक है॥
वेद तत्त्व दर्शाय है। ज्ञान सभी को भाय है॥३॥
लक्ष्य सभी का एक ही। कभी न होय अनेक ही॥
सद्घन चिद्घन प्रेय है। अभ्युन्नत निःश्रेय है॥४॥
तत्त्व सच्चिदानन्द है। परिपूरण निर्द्वन्द्व है॥
यह सिद्धान्त अकाट्य है। सिद्ध साधना साध्य है॥५॥

एक अखण्ड तत्त्व

अखण्ड भू निहारते अखण्ड ये नभस्थली
अखण्ड सिन्धु विन्दु का भरा अखण्ड विश्व में।
अखण्ड विश्व चेतना अखण्ड वस्तु में रही
न खण्ड मण्ड हो सकी कहीं न विश्व खण्ड में॥१॥

अखण्ड नाम रूप की प्रभा विभासती यहाँ
अखण्ड दीप्ति भानु की न अन्धकार को लखी।
अखण्ड धाम में छिपे अखण्डकाय ही रहे
प्रयत्न सूर्य ने किया निशा निहार ना सके॥२॥

अखण्ड तेज वायु के बिना न प्राणिवर्ग है
अखण्ड ब्रह्म अण्ड से लसे समस्त पिण्ड ये।
अखण्ड ज्ञान ज्योति की धरा बिलोकते यहाँ
जगी जगा रही अहो! प्रसुप्त चेतना न जो॥३॥

अखण्ड राम नाम की ध्वनि-प्रवृत्त है कहीं
अखण्ड पाठ भी करे प्रशस्त भक्त मण्डली।
अखण्ड जाप मन्त्र का किये विधान से सुधी
अखण्ड को मिला रही कि खण्ड खण्ड साधना॥४॥

अखण्ड है अनन्त है लखे इसे सुसन्त ही
न सत्य का लखे कहीं कभी कि कोइ अन्त वह।
असीम को न सीम भो हुई कहीं गढन्त वह
हुआ न देश काल या कि वस्तु रूप अन्त ही ॥५॥

एक की अनेकता

व्यक्त हैं अभिव्यक्तियाँ अव्यक्त की
व्यक्तियों में व्यक्त हो हो भासतो।
किरणमाली की अपरमित रश्मियाँ
दृष्ट दशदिशि में दशाएँ दर्शातीं ॥१॥

विन्दु में गोखुर जलों में गर्त में
पात्र में अञ्जली में सब घटों में।
कूप सरिता बावड़ी नद में बड़े
लखें जल आकार अगणित सबों में ॥२॥

मिल रहा परिचय सभी में एक का
खिल रहे मुखकमल रवि की प्रभा से।
जलज नाना रूप ले रह एक ही
फेन बुद-बुद लघु कणों में भी लसे ॥३॥

लहरियों में ज्वार में कि प्रवाह में
बिना लहरो कौन लहराता यहाँ।
देह इन्द्रिय प्राण मन वा बुद्धि में
चेतना रह नित्य चेतन की वहाँ ॥४॥

एक चेतन का विभव कि विवर्त सब
वर्तता वह दृष्टिगोचर हो रहा।
नाम रूप उपाधि केवल पाय के
व्यक्तियाँ अस्तित्व पा जातीं अहा ॥५॥

शक्ति कहते प्रकृति जो वह शक्त से
नहीं उपजी बह सशक्त सदा रहा।
शक्त कैसा शक्ति के उपजे प्रथम
शक्तिशाली पर उसे जाता कहा ॥६॥

बीज में रह वृक्ष सारा पूर्ण ही
प्रकृति के त्यों गर्भ माँहि प्रपंच रह।
प्रकृति अपरा-परा-शक्ति-स्वभाव या
अन्य के आश्रित पृथक् भी हो न वह ॥७॥

प्रकृति माया रही मायो ईश वह
एक है अव्यक्त कारण कार्य क्या।
लखो मायिक स्वापनिक संसार या
दृष्टि केवल सृष्टिमय भासी न क्या ॥८॥

एक द्रष्टा

दृश्योपासक है जग सारा द्रष्टा पर नहि जाती दृष्टि
मन इन्द्रिय भी पड़े द्वन्द्व में, ग्रहण कर रहे हैं ये सृष्टि।
सृष्टा को भी सृज्य मान पर नही सृष्टि की उसपर दृष्टि
दृष्टि-सृष्टि हो, सृष्टि-दृष्टि हो, रही दर्शनों में ही दृष्टि ॥१॥

द्रष्टा रहे न चित्त दौड़ता, पग-पग आगे पीछे होय
भूत भविष्य बना डाले ये, काल मानकर क्षण-क्षण जोय।
द्रष्टा की नगरी में ये भी, दृश्य बने लखते सब कोय
अपनो-अपनी दृष्टि सजाते, द्रष्टा दर्शक रहते सोय ॥२॥

एक का विभव

व्यक्ति एक जगती में पाया, सब अपने में पूरा
तत्त्व एक वह मिल जुलकर, भी रहा कभी न अधूरा।
कण-कण कनक अन्न दाने सब भले अनेकों भासै
एक राशि सब गेहूँ की, वह भिन्न न जाति प्रकासै ॥१॥

जोभी जहाँ वस्तु है भासो, सभी पूर्ण अपने में
एक रही है सदा रहेगी, भेद न लख सपने में।
सजातीयता बिजातीयता, स्वगत भेद ना कोई
यह कुछ वह कुछ अन्य कोइ कुछ निज में भेद न होई ॥२॥

जगते सोते सदा एक है, हँसते रोते सारे
रहें एक ये कर विवाह भी, अथवा रहे कुवाँरे।
पन्थ अनेकों मतवादों में, पड़े लखें सब प्राणो
प्राणी-पाणो एक प्राणमय, जीवन बना कहानी ॥३॥

सब में प्राण एक ही छाया, माया मायो बोलो
जीव कहो जगदीश ईश, बस तत्त्व एकहो तोलो।
भीतर बाहर रही समायो, सत्ता सबके मांही
नहीं आजतक कही दूसरी, पायी ही परछांही ॥४॥

निज सिवाय ना कँहो अहन्ता, कभी किसीने देखो
ममता भी ना निज वैभव से, बाहर बिखरी लेखी।
मैं मेरा निज में ही पाये, कारक सभी निजी में
कब न सिद्ध होते हैं बोलो, है क्या जो न निजी में ॥५॥

अपने आप मांहि परिपूरण, स्व-स्वरूप दिखलाए
स्वयं तत्त्व में नहीं भूलकर, परता कुछ पनपाए।
वाद विवाद स्वयं में कैसा, स्वयं न जीता मरता
किसको कौन कहे समझाये, द्वन्द्व न कोइ ठहरता ॥६॥

आश्रय कभी नही दर्पण दे दृश्य जगत् को कोई
नहीं चित्र पर की सुरसरिता, पाप ताप कुछ धोई।
अनबिचार त्रयताप पाप, त्रिगुणात्म दृश्य ये पाते
चेतन साक्षी द्रष्टा में पर, नहि परिताप लखाते ॥७॥

धर्म कर्म योगादि साधना, साधी उसे न कबहू
आधिव्याधि न घेर सकी है, चिदाकाश की तबहू।
सदा एक जो उसे द्वैतमय, भूव न कोई खाता
परमतत्त्व का बोध त्रिपुटि पर, नित्य एक लहराता ॥८॥

सो वह यह मैं तू सबही, सदा एक रस छाया
बिन जाने निजका स्वरूप, यह जीव बना भरमाया।
नितव्यापक एकहि चेतन, जो चिदानन्द नहिं जाना
निज स्वरूप अपना बिसरा कर साध रहा है नाना ॥९॥

नाना नाना कभी कि हाँ ना, कहता ताना बाना
कपड़ा धोती साड़ी पगड़ी, उसे अँगोछा जाना।
रहा रहेगा सदा एक रस, निज स्वरूप सब मांही
ग्रहण त्याग करना धरना ना, रहे एक को छांही ॥१०॥

एक देव सब भूतों में रह. छिपा गूढ ना लखें जिसे
व्यापक सभी जगत् में रहता, अन्तरात्म भी कहें उसे।
कर्मों का अध्यक्ष प्रवर्तक, सभी भूत जिसमें वसते
साक्षी वह चैतन्य अकेला, केवल निर्विशेष गहते ॥११॥

एक सच्चिदानन्द

एक ही दुर्व्यसन जीवन नारकी
बना देता एक संयम स्वर्ग भी।
भूल भी वह एक चुभती शूल सी
पूर्व से पश्चिम भटकता नर तभी ॥१॥

एक ही परमात्म नहिं दश-बीस वह
जीव भी रह एक भाँय अनेक से।
एक ही रवि विम्ब अगणित घटों में
भासते प्रतिबिम्ब नाना हुए से ॥२॥

एक सत् अपनाय सज्जन सन्त भो
एक ही सिद्धान्त आस्तिक जगत् भी।
एक पति अपना रही नारी सती
तत्त्व रहना एक था रहता अभी ॥३॥

परमार्थ रूप विशुद्ध जो अद्वैत ही
वाह्य आंन्तर भेद से रह शून्य जो।
ज्ञान वह परिपूर्ण वस्तु स्वरूप सत्
सभी के भीतर समाया एक सो ॥४॥

है उसीका नाम शिव भगवान् या
वासुदेव तथैव पण्डितगण कहें।
तत्त्ववेत्ता तत्त्व एक अनेक-सा
ज्ञानमय चिन्मय कि अविनाशी कहें ॥५॥

सत्ता सभी में बोलती हैं एक की
चिद्रूपता ही भान में आती यहाँ।
व्यापक हुए से ब्रह्म कहलाया बड़ा
आत्मा स्वरूप सदैव यह भासे यहाँ ॥६॥

चैतन्य हूँ चैतन्य है अतिरिक्त नहि
सद्रूप हूँ सद्रूप है वह सर्वदा।
आनन्द हूँ आनन्द है परिपूर्ण भी
मैं तू सभी वह एक विभु रहता सदा ॥७॥

ब्रह्म हूँ मैं ब्रह्म है आत्मा सदा
नहिं अनात्मा देह जड मैं दृश्य या।
युक्ति से अनुभूति से श्रुति से सधा
जो ग्रहण होता ज्ञानगति सब रही या ॥८॥

भासता जो बुद्धि में मन में रहा
इन्द्रियों के द्वार से अन्दर बहिर।
एकरस चेतन प्रकाश न अन्य कुछ
विषय होते नाम रूप इधर उधर ॥९॥

नित्य हूँ मैं शुद्ध हूँ मैं बुद्ध हूँ
मुक्त हूँ मैं सदा बन्धन रहित जो।
व्यर्थ का आरोप मुझमें रह अतः
दृश्य का अपवाद कर शिव शान्त सो ॥१०॥

एक अपना रूप

रह स्वयं अस्तिव सत्ता संस्फुरण
सभी में निज की इकाई भासती।
अन्य की आश्रय विषयता नहि कहीं
कहाँ अपने में पराइ प्रकाशती ॥१॥

भूमि अपनी सभी अपने देश में
रह रहे हैं सभी अपने समय में।
साधते जीवन स्वयं जीते रहें
अन्य का कुछ नहि सहारा स्वयं में ॥२॥

कब अभाव निहारते निज में निजी
अन्य का निज में न रह अधिकार भी।
स्वयं अपने आप में परिपूर्ण है
सब रहा निज का स्वरूप सु सत्य ही ॥३॥

लगा ध्यान समाधि देखो दूसरा
कौन आकर है घसा निजरूप में।
सधो अपने आप अपनी एकता
रह इकाई नित अखण्ड स्वरूप में ॥४॥

भीति नहि अनरीत नहि जब किसो को
पड़ी छाया कभी कोई कहीं भी।
जब सभी में सभी का यह रूप रह
कौन किससे रखे अपना भेद भी ॥५॥

अखण्ड परिपूर्ण वस्तु

एक ही भगवान् जब सर्वत्र हैं
पूर्ण व्यापक एकरस तात्त्विक तथा।
दूसरा उसके सिवाय न सत्य जो
तब भला! किससे कलह होता वृथा ॥१॥

अन्य कोई वस्तु सत्ता जब नहीं
अन्य कोई वैर तब क्या करेगा।
अन्य कोई दुखदा जब ना रहा
तब सभी भगवान्मय जग रहेगा ॥२॥

दे रहे भगवान् सबको ज्ञान भी
भुलाकर भी कराते सं-स्मृति वही।
प्रेरणा करता कि अन्तर्यामि रह
नाचता रह स्वयं नचते रँह सभो ॥३॥

ज्ञान भगवत तत्त्व का यदि हो गया
खो गया अज्ञानतम सब द्वैत भ्रम।
जग गया सोया पड़ा जो जीव था
पग गया रसमाधुरी में शीघ्रतम ॥४॥

उड़े हम आकाश में खग रूप हो,
चरें हम मृग रूप होकर धरा पे।
हमी पशुपति तथा खगपति भी हुए,
एक चेतन रह चराचर रूप पे ॥५॥

जीव ईश्वर नाम रूप सँवारता
आत्म सब परमात्म सब यह लख पड़ा।
पाञ्च भौतिकता न रह सर्वात्म में
रह सभी में सभी से न्यारा खड़ा ॥६॥

एक ही जब पूर्ण तत्त्व लखा रहा
कौन हम तुम यह न कुछ वह रहा तब।
सभो भूषण स्वर्णमय घट मृत्तिका
भासने लगते गहें क्या अन्य सब ॥७॥

पारमार्थिक वस्तु सत् परिपूर्ण रह
स्वर सुरों का असुर में भी छा रहा।
एक सर्वाधार होकर लसा जो
ज्ञान पूरा हुए द्वैत कहा रहा ॥८॥

पूर्णतत्त्व

पूर्ण केवल एक घट-घट व्याप्त जो
कहो ईश्वर ब्रह्म चेतन सर्वगत।
लखा ज्ञानी ने यहां कृतकृत्य हो
सिद्ध रह सर्वत्र यह वेदान्त मत ॥१॥

रहा निर्गुण तत्त्व पूर्ण निवृत्तिमय
गुण क्रिया होती प्रवर्तित सगुण में।
धर्म धारित हुए औपाधिक तभी
व्यक्तता नहि रहे निर्गुण रूप में ॥२॥

नहि प्रगट प्रभुदित धरा अव्यक्त की
दृष्टिगोचर ना हुआ द्रष्टा कभी।
आत्म सबकी रहा अन्तर्वर्ति रह
तत्त्व सच्चिद्रूप अतिशय प्रिय जमी ॥३॥

अस्तिव वस्तु स्वरूप की परिचायिका
है आत्मसत्ता स्वयं फुरतो रह सदा।
कालत्रयों में बाध जिसका हो नहीं
प्रिय लग रहा संसार इससे सर्वदा ॥४॥

तत्त्व केवल एक व्यापक सभी में
व्याप्य घट-घट नाम के सारे रहे।
एक देशी वस्तु जो परिछिन्न रह
अपरिछिन्न अनन्त विभु तात्त्विक रहे ॥५॥

एक अनुभूति

गूढ़ सब में रहा केवल एक ही
सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।
कर्म का अध्यक्ष सब में रह बसा
देवनिर्गुण रहा साक्षी चिदात्मा ॥१॥

सगुण होकर जन्म जन्मान्तरों में
छिपा रह लखते न सब आश्चर्य है।
जगत् में जाग्रद्दशा में स्वप्न में
रहे नित निद्रादि में भी एक है ॥२॥

देश में दश दिशा में सत्र लोक में
लोकते सब आ रहे लखते न पर।
हो रही उपलब्धि सब में उसी की
वस्तुओं में बसा बसता सभी घर ॥३॥

कहा व्यापक तभी नभ-सा पवन-सा
तेज-सा जल सा सरसता गन्ध सा।
सभी भूतों में समाया रह वही
कहा अन्तर्वति आत्मा रह बसा ॥४॥

कर्म क्या सब क्रिया उसके बिना कब
हुआ जब अध्यक्ष तब प्रत्यक्ष वे।
लगे होने जीव जग के प्राण के
सभी वह व्यापार साधे देव ये ॥५॥

कौन है वह एक साक्षी जो कहा
कौन है वह एक चेतन जो रहा।
कौन है वह एक केवल कहा जो
सगुण होते हुए निर्गुण सधा सो ॥६॥

हो रहा अनुभूत नित्य प्रकाशता
आ रहा सब भाँत स्वयं प्रकाश रह।
सभी को भासित न क्यों तब हो रहा
आँख बिन किसको दिखाई देय वह ।।७।

हुआ है अनुभूय अनुभविता रहा
स्वयं अनुभवगम्य अनुभव रूप जो।
कहो या अपरोक्ष साक्षात् आत्म हो
कौन किससे होय तब अनुभूत सो ।।८।।

सतत एक अखण्डता

जिसे जाग्रत् में न समझें स्वप्न में
कभी वह लख लेय ध्यान समाधि में।
रहे मूर्च्छा प्रलय में भी वह सदा
लखें विरले तत्त्व अपने आप में ।।१।।

रह सतत जो चेतना चिन्मय वही
सभी है चैतन्य की सद्रूपता।
कभी इसका जो अभाव न देखते
एकसी लखते कहो तब सत्यता ।।२।।

भले उसपर आवरणसा आय कँहि
पर प्रकाशक रहे उस आवरण का।
क्या अँधेरें में रहा वह दृष्टिपथ
हो रहा सर्वत्र दर्शन उसी का ।।३।।

हो रही अनूभूति तात्त्विक सुधी को
सुधासी वह भारही आनन्द-दा।
स्वयं आभा भला कब है मलिन हुइ
अहो चेतन देव भासे सर्वदा ।।४।।

दृष्टि द्रष्टा की न नसती कभी भी
रहे साक्षी सदा भाव अभाव का।
स्वयं का अस्तित्व क्या खोता स्वयं
साधना से हो कि साधक स्वयं का ।।५।।

अहो ! तन्मयता लसी-तद्रूपता
सधीं तत्परता कहो तल्लीनता।
एक रसता रही सुखदा वस्तुता
रहजता सद्रूपता चिद्रूपता ॥६॥

ग्रहण त्याग न रह गया तब सुबुध को
राग द्वेष रहें कहाँ धीमान को।
मोह शोक नसे सधी निर्द्वन्द्वता
कहाँ कार्याकार्य जीवन्मुक्त को ॥७॥

भूमिकाएँ सिद्ध साधक को सधीं
जो असंख्यों वर्ष से अनुभूतियाँ।
आय करता हुआ जाग्रत स्वप्न में
हुईं या कि समाधि में अभिव्यक्तियाँ ॥८॥

शिव स्वरूप की व्यापकता

ब्रह्म वैभव छा रहा सर्वत्र ही
पूर्णता में नहिं अपूर्ण रहे कभी।
विश्व यह विश्वात्म पूर्ण विराट् ही
शोभता रह सर्वदा सम्राट् ही ॥१॥

योग बिन योगी कहाँ से है हुआ
बिना पानी का कहाँ है क्या कुआ।
भक्त नित रह भक्ति से संयुक्त ही
लखें मनमाना निजात्म अनूप ही ॥२॥

भिन्न आत्मा से अनात्म कहाँ रहा
परे जो परमात्म इससे भा रहा।
श्यामसुन्दर की अनोखी छवि रही
लखें और लखायें सबको भक्त ही ॥३॥

दृष्टि में सर्वश विभु छाये रहें
कहो प्रिय परमात्म वे भाए रहें।
जहाँ जाती दृष्टि शिवस्वरूप ही
लखें मनमाना निजात्म अनूप हो ॥४॥

मुदित रहते उन्हें पाके पूर्ण ये
परम प्रेमास्पद निहारें रूप ये।
बहिर अन्तर सुधा की धारा बही
भक्त व्यापक ब्रह्म साधे शिब सही ॥५॥

कायकाशी प्रकाशी सर्वत्र हो
विश्वनाथ लखा रहे सब विश्व ही।
भरे विश्वम्भर रहै विश्वात्म हो
विश्व आत्मा विश्व दृश्य सखा कहो ॥६॥

विशति = प्रविशति विष्णुरूप हुए वही
नाम रूपों से विभक्त विराट हो।
विश्वमय वैभव बढ़ाते आरहे
चिन्मयी आभा लिए जो भारहे ॥७॥

तव बड़ा इनसे अन्य कौन लखा रहा
विश्वेश की महिमा विशद सब पा रहा।
कर रहे हैं जयतु जय शिव भक्तवर
कृतकृत्य होते नमस्कार प्रणाम कर ॥८॥

शिव की पूजा

अभिषेक शिव का सर्वदा होता रहे
शीतल हृदय तब भक्त यह क्यों कर दहे।
अमृतमय धारा अजस्र यहाँ बही
पूजा अखण्ड निहार उरमें शान्ति ही ॥१॥

मुक्त जीवन की कड़ी शिव से जुड़ी
बनी पंछी वृत्ति जो नभ में उड़ी।
चिद्गगन को छोड़ कहँ यह जायगी
जहाँ जाती शिव सिवाय न पायगी ॥२॥

गति विधि सभी की शिवमयी वह भायगी
अभयता शुचिता प्रमुदिता भायगी।
बरसी कृपा शिव की कही निज भक्त पर
सब बिश्व इनका होगया भक्त-प्रवर ॥३॥

देन शिव की बड़ी नर हों धन्य ही
हुए नारायण सभी गणमान्य ही।
जीव को शिव मिल गया निज रूप में
न्यूनता क्या रही आत्म-स्वरूप में ।।४।

सब ध्यान पूजन सध गया शिव का यहाँ
शिव शक्ति का संयोग पूर्ण लखा यहाँ।
आनन्द बन जहँ तहँ लखाने लग गया
शिव शिव भजे सौभाग्य समुचित जग गया ।।५।।

सिद्ध जप तप किये होते सिद्ध सब
जन्म जन्मान्तरों से जो जपे शिव।
रहा जीवन का प्रवाह अजस्र जो
हुआ अचिद्रूपता का बरण जो ।।६।।

साधनाएँ सफल सारी हो गई
आपदाएँ कहो जन की नस गईं।
रहा नहिं कर्तव्य कुछ धर्तव्य भी
शिव को निहारे मिल गया सर्वस्व हो ।।७।।

जहाँ जाती दृष्टि शिव नियरा रहे
आलाप क्या मुरली-मनोहर कर रहे।
अमन चयनी बजा वंशो खूब रे
चढ़े गणपति को सुकोमल दूब रे ।।८।।

परमशिव-माहात्म्य

परमशिव की रही महिमा परम हो
परम उत्तम वेद वर्णित सभी ही।
परम तत्त्व स्वरूप शिव हैं सर्वदा
एकमेवाद्वितीयं शंकर सदा ।।१।।

परम देवासुरों के रक्षक रहें-
पान विष का किये पालक ये रहे।
महादेव इन्हें अतः माने सभी
अमृत सेवन कराये त्राता तभी ।।२।।

शिव रहें परम कल्याणकारी सभी के
शङ्कर हुए सुखकर सभी को शम्भु ये।
शम कहो सुख की भावना भक्तार्थं ये
करते रहे शिव शम्भु भोलेनाथ ये ॥३॥

हैं उमापति उमाकान्त कहायें भी
हर हरें सबको घोर ताप नसायें ही।
जो स्थूल-सूक्ष्म शरीर कारण बाध ही
त्रिपुरारि नाशक पुरत्रय के हुए ही ॥४॥

नाम मृत्युञ्जय इन्हीं का सिद्ध हो
मन्त्र वैदिक रहा लोक प्रसिद्ध सो।
वृषम होता श्रेष्ठ धर्मं स्वरूप हो
ध्वजा में वह चतुष्पद रहता जभी ॥५॥

शूलिन् कहो कि त्रिशूलधर वे रहें जभी
शिर गंग धारे कहे गंगाधर तभी।
मृड नाम सुख का रहा शिव सुखमय रहे
कदन कीन्हे मदन का मदनारि वें ॥६॥

यह काल हर शिव की कहो गौरीश की
गंगाधरादिक नाम से सर्वेश की।
रह वन्दना ये रुद्र पशुपति की सभी
शिव रुदन करते प्रगट हों रुत् दुःख भी ॥७॥

वह द्रवित करते रुद्र कहलाते तथा
पशु जीव सारे ईश पशुपति सर्वथा।
ईशान ईश्वर सभी विद्या आदिका
ईशन कि शासन करे प्राणी मात्र का ॥८॥

हैं काय काशीपुरी के स्वामी वही
हम उन्हीं को सेवें सदा भजते सही।
हे शम्भु जय हो आपकी हे शम्भु जय
आवृत्ति बारम्बार करते सदा जय ॥९॥

करते महात्मा भक्त सन्त सदैव ही
नामावली से करें सुमरण सदा ही।
यह परम शिव का परम मंगलदायि पद
सब प्राप्त करते रहे अक्षय अभय पद ॥१०॥

शिव शिवेति शिवेति शिवेति वा
हर हरेति हरेति हरेति वा।
भव भवेति भवेति भवेति वा
मृड मृडेति मृडेति मृडेति वा ॥११॥

भज मनः शिवमेव निरन्तरम्
जप मनः शिवमेव निरन्तरम्।
रट मनः शिवमेव निरन्तरम्
स्मर मनः शिवमेव निरन्तरम् ॥१२॥

तत्त्वतः शिव सदा शिव जब भा गया
सर्वदा सर्वत्र पूर्ण सुहा गया।
क्या रहा जप तप कहो शिव साधने
जहाँ मन जाता लगा शिव भासने ॥१३॥

तब वहाँ नित्य समाधि शिव की सध रही
नहिं जोव का अस्तित्व शिव से विलग ही।
रह गया भेद न कोइ इस विश्वात्म का
सर्वात्म का शिव रूपमय परमात्म का ॥१४॥

शिव प्राप्ति का फिर प्रश्न क्या रहना वहाँ
संयोग और वियोग शिव का क्या वहाँ।
साधक न साधन साध्य की चिन्ता रही
व्यापक कहो उस परम शिव की ये सभी ॥१५॥

सहज कहते जिसे नित्य समाधि ही
विज्ञ के हिय में छिपा वह आत्म ही।
प्रगट जो हो गया भ्रम कुछ रहा नहि
परम शिव की छवि निहारे जहाँ कँहि ॥१६॥

रचनाकार का परिचय

'रेवा तीरे तपः कुर्यात्' उक्ति चरितार्थ करते तपोमूर्ति परिपूर्णश्री स्वामी ओङ्कारानन्द गिरिजी ने नर्मदा तट पर वास करते हुए नर्मदाजी की प्रेरणा से अपनी लेखनी उठाई। तूलिका ने माँ के चरणों में अनेकों पुष्प समर्पित किये। प्रथम तो नर्मदाष्टक जो भगवत्पाद आद्य श्री शंकराचार्य ने रेवा के प्रवाह को जब कलश में भर दिया। तभी उनकी सुन्दर स्तुति की जो 'नर्मदाष्टक' नाम से प्रसिद्ध हुई। श्लोक के प्रत्येक पद में 'नमामि देवि नर्मदे' कहकर वन्दना वहाँ हुई। इसी का भावविभोर हुए तपोमूर्तिजी ने हिन्दो छन्दानुवाद अतिशीघ्र कर दिया। 'नर्मदा कल्पवल्ली' में जिसका प्रकाशन लाखों की संख्या में हुआ।

इसके बाद श्री नर्मदा पुराण (रेवाखण्ड) के दो संस्करण प्रकाशित हुए। अभी कुछ वर्ष पूर्व 'नर्मदा प्रदक्षिणा' नामक पुस्तक भो प्रकाशित कराई। जो प्रत्येक नर्मदा-तोरवासी के लिए अत्यन्त लोकप्रिय हुई। इसका तीसरा संस्करण चल रहा है।

यही नहीं तपोमूर्तिजी जो सन्त समाज में नर्मदातीरस्थ सन्त के नाम से जाने जाते हैं। जिन्होंने 'नर्मदा सत्संग आश्रम', 'नर्मदा सत्संग भवन', 'नर्मदा मन्दिर' आदि की यत्र-तत्र संस्थापना कराई। इस समय होशंगावाद में संन्यास आश्रम-शंकरविद्या - मन्दिर का निर्माण प्रगति पर है।

नर्मदा साहित्य के अतिरिक्त वेदान्त के ग्रन्थों का पद्यानुवाद गद्य में भी 'शंकर ग्रन्थावली' नाम से प्रसिद्ध है। गीता के शांकर भाष्य पर हरिगीति छन्द लिखकर राष्ट्रभाषा का गौरव बढ़ाया। अनुभूति से ओतप्रोत आध्यात्मिक अन्य गद्यपद्यमयो रचनाएँ भी प्रसिद्धि को प्राप्त हो रही हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ 'परम शिव' यह भक्तिज्ञान रसमय काव्य का तृतीय भाग है, जो पाठकों को अति मनोरम सिद्ध होगा, किं बहुना।

गीता जयन्ती
वि. सं. २०५१

राधेश्याम दीक्षित बी. ए.
प्रबन्धक : नर्मदा सत्संग भवन
नर्मदापुर (होशंगाबाद)

ज्ञानसत्र प्रकाशन तथा विवेकाश्रम न्यास की नवीन उपलब्धियाँ

१. श्रीशङ्कर चरितामृत-संक्षिप्त शङ्कर दिग्विजय (हिन्दी संस्कृत) २०.००
२. शङ्कर वचनामृत (चालीस प्रकरण ग्रन्थ सानुवाद) १२.००
३. गीता शाङ्कर भाष्य की विशेषताएँ (अनुवाद सहित) १०.००
४. गीता के भगवान् और उनकी देन १०.००
५. अपने आपको जानो (समृद्ध द्वितीय संस्करण) १५.००
६. नर्मदा कल्पवल्ली (समृद्ध परिशिष्ट) ५.००
७. नर्मदा प्रदक्षिणा (४८९ तीर्थों की कथा तथा माहात्म्य) १५.००
८. नर्मदा पुराण (रेवाखण्ड , २३६ अध्याय सटीक पत्राचार ८०.००
९. नमामि देवि नर्मदे (भाषा वार्तिक-विशद व्याख्या) ६.००
१०. आत्मदर्शन (वेदान्त पदावली) १०.००
११. आत्मानात्म विवेक (सानुवाद) १.००
१२. श्रीदक्षिणामूर्ति गुरुस्तव (वार्तिक सहित सानुवाद) १०.००
१३. भक्त-भक्ति-भगवान् १२.००
१४. बड़ा कौन १२.००
१५. परमशिव १५.००
१६. गोविन्दगुण कीर्तन-रामश्यामगुण कीर्तन-गोपीगीत आदि समश्लोकी अनुवाद सहित भी प्राप्य है

विशेष जानकारी के लिए पत्राचार करें—

१. नर्मदा सत्संग भवन, 'ज्ञानसत्र' प्रकाशन न्यास
नर्मदापुर (होशंगाबाद) म० प्र० ४६१००१ (म० प्र०)

२. विवेक आश्रम 'न्यास' मुक्तिकुण्ड (मायाकुण्ड)
ऋषिकेश उ० प्र० २४९२०१

● मुद्रक : आनन्द कानन प्रेस, टेढ़ीनीम-वाराणसी : फोन : ३२२३३७